हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर-सीरीज़का २२ वाँ ग्रन्थ

मेवाड़-पतन

मूल लेखक

स्वर्गीय द्विजेन्द्रलाल राय

अनुवादकर्त्ता

रामचन्द्र वर्म्मा

प्रकाशक—

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, बम्बई

1-4-0

प्रकाशक—
नाथूराम प्रेमी,
हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, बम्बई नं० ४

तेरहवीं बार

सितंबर, १९४५

मुद्रक—
रघुनाथ दिपाजी देसाई,
न्यू भारत प्रिंटिंग प्रेस,
६, केळेवाडी, बम्बई नं. ४.

भूमिका

इस ग्रन्थके मूल लेखक स्वर्गीय द्विजेन्द्रलाल राय बंगभाषाके ख्यातनामा लेखक कवि और नाट्यकार हो गये हैं। नाटक-लेखकोंमें तो आपकी बराबरी करनेवाला इस देशमें शायद ही कोई हो। आपके नाटकोंका बंगसाहित्यको बहुत बड़ा अभिमान है। आप उन युगप्रवर्तक लेखकोंमेंसे थे, जो अपनी प्रतिभासे साहित्यकी धाराको एक नई गति प्रदान कर जाते हैं।

द्विजेन्द्रबाबू अँगरेजीके एम. ए. थे। आपका अँगरेजी भाषापर बहुत बड़ा अधिकार था। जब आप कृषिशास्त्रका अध्ययन करनेके लिए विलायत गये थे, उस समय आपने 'Lyrics of Ind' नामका अँगरेजी काव्य लिखा था, जिसे पढ़कर लोग विस्मयविमुग्ध हो गये थे। तत्कालीन अँगरेजी कवि सर एडविन आरनोल्डने उसकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा की थी और एक विदेशी पुरुषकी अँगरेजी भाषामें इतनी अधिक क्षमता देखकर आश्चर्य प्रकट किया था। उसी समय आपके मित्रोंने आपसे अपनी इस कवित्वशक्तिको मातृ-भाषाकी सेवामें नियोजित करनेकी प्रेरणा की, जो आपपर काम कर गई और उसका फल यह हुआ कि आप अपने जीवनमें नाटक, गीतिनाट्य, प्रहसन, काव्य और गान आदि अनेक प्रकारके लगभग २५ ग्रन्थ-रत्न अपनी मातृ-भाषाके चरणोंमें अर्पण करके अमरता लाभ कर गये। द्विजेन्द्रबाबूका स्वर्गवास हुए कोई चार वर्ष हो गये। १७ मई सन् १९१३ को आपने यह धराधाम छोड़ा था। आपकी मृत्युसे वंग-साहित्य-संसारमें अपार शोक छा गया था।

द्विजेन्द्रबाबूके प्रायः सब ही उत्तम नाटकोंको हमने पढ़ा है। उनमें हमको एक अपूर्व ही आनन्द प्राप्त हुआ। हमने बम्बईकी प्रसिद्ध नाटकमण्डलियोंके उर्दू, हिन्दी, गुजराती और मराठीके अनेक नाटक देखे हैं; परन्तु हमें ऐसे स्वर्गीय और पवित्र भाव, ऊँचे और मार्जित विचार कहीं नहीं मिले। लेखनीकी हृदयको हिला देनेवाली और हृत्तन्त्रीको बजा देनेवाली ऐसी आश्चर्यजनक क्षमता हमने कहीं नहीं देखी। उच्चश्रेणीके कौटुम्बिक प्रेम, जातीय प्रेम और विश्वप्रेमसे आपकी रचनायें सराबोर हैं। मनुष्यस्वभावका चित्रण आपके नाटकोंमें बहुत ही अच्छा हुआ है। किसी भी पात्रको आप ले लीजिए, उसका एक निश्चित स्वभाव आदिसे अन्त तक एक खास सीमाके भीतर वहता हुआ दिखलाई देगा। अस्वाभा-विकताका कहीं नाम भी नहीं। आपके आदर्श चरित्रोंकी चित्रशाला भी परम दर्शनीय है। पाषाणीमें आदर्श ब्राह्मणचरित्र, राणा प्रतापसिंहमें आदर्श क्षत्रियचरित्र, दुर्गादासमें आदर्श पुरुषचरित्र और सीतामें आदर्श स्त्रीचरित्र देखकर मन एक अपूर्व आदर्श-लोकमें विचरण

करने लगता है। आपके नाटकोंमें स्त्रीपात्रोंकी तो एक अपूर्व ही सृष्टि है। स्त्रीजातिकी इतनी प्रतिष्ठा, इतनी पवित्रता और इतनी महत्ता आप शायद ही किसी लेखककी रचनामें पायँगे। द्विजेन्द्रबाबूकी भारतीय स्त्रियोंपर अगाध श्रद्धा थी। जिस समय आपकी पत्नीका देहान्त हुआ उस समय आपकी अवस्था केवल ३५ वर्षकी थी, पर आपने द्वितीय विवाह नहीं किया—आजन्म ब्रह्मचर्य पालन किया। यदि आपसे कोई द्वितीय विवाहका अनुरोध करता था, तो आपकी आँखोंसे आँसू निकल पड़ते थे। कहते हैं कि आपने अपनी पतिप्राणा पत्नी श्रीमती सुरबालादेवीके साहचर्यसे ही स्त्रीजातिकी उस पवित्रता और महत्ताका अनुभव किया था जो आपकी रचनाओंमें जगह जगह प्रस्फुटित हो रही है।

महर्षि टाल्स्टायपर लेखककी प्रगाढ़ भक्ति थी। उन्होंने जिस विश्वप्रेमका प्रचार किया था, इस नाटकमें लेखकने उसीके साथ अपनी हार्दिक सहानुभूतिका परिचय दिया है।

लेखकके कथनानुसार यह नाटक एक महान् सिद्धान्त—विश्वप्रेम—के उद्देश्यको लेकर लिखा गया है। इसमें कल्याणी, सत्यवती और मानसी इन तीन पात्रोंके चरित्र क्रमसे दाम्पत्यप्रेम, जातीयप्रेम और विश्वप्रेमकी मूर्तियोंके रूपमें कल्पित किये गए हैं। इस नाटकका मुख्य उद्देश्य विश्वप्रेमकी गरिमा और महत्ता प्रकट करना है।

यह नाटक कलकत्तेके मिनर्वा थियेटरमें (दक्षिण भारतमें भी कई स्थानोंमें) अभिनीत हो चुका है। इसे जिस प्रकार दर्शकोंने पसन्द किया है उसी प्रकार साहित्यसेवकोंने भी इसकी भूरि भूरि प्रशंसा की है। एक प्रवीण समालोचकने तो इसे ' इस युगका सर्वगुण-संपन्न श्रेष्ठ प्रकाश ' कह डाला है। हमको आशा है कि हमारे गुणग्राही हिन्दी-संसारमें भी इसका यथेष्ट आदर होगा और इसके अभिनयसे जो विश्वप्रेमकी मन्दाकिनी वहेगी उसमें हमारे देशका चिरसंचित धार्मिक द्वेष अवश्य बह जायगा।

माघशुक्ला १०
सं० १९७३ वि०

निवेदक—
नाथूराम प्रेमी

नाटक के प्रधान पात्र

नट

राणा अमरसिंह	मेवाड़के राणा
सगरसिंह	अमरसिंहके बड़े काका
महावतखाँ (मुगल-सेनापति)	सगरसिंहके पुत्र
अरुणसिंह (सत्यवतीका पुत्र)	महाबतखाँका भानजा
गोविन्दसिंह	राणा अमरसिंहके सेनापति
अजयसिंह	गोविन्दसिंहके पुत्र
गजसिंह	जोधपुरके राजा
हिदायतअली	मुग़ल सेनापति
अब्दुल्ला	हिदायतअलीका कर्मचारी

नटी

रानी रुक्मिणी	राणा अमरसिंहकी स्त्री
मानसी	राणा अमरसिंहकी कन्या
सत्यवती	सगरसिंहकी कन्या
कल्याणी	महाबतखाँकी स्त्री

मेवाड़-पतन

पहला अंक

पहला दृश्य

स्थान—सालूम्बर-नरेश गोविन्दसिंहका घर।

समय—दोपहर

[गोविन्दसिंह और उनके पुत्र अजयसिंह खड़े हुए बातें कर रहे हैं]

गोविन्द०—अजय, राणाजीने यह बात किससे सुनी कि मुगल-सेना मेवाड़पर आक्रमण करनेके लिए आ रही है ?

अजय०—जी, यह तो मुझे नहीं मालूम—

गोविन्द०—राणाजीने तुमसे क्या कहा था ?

अजय०—उन्होंने यही कहा था कि हम सन्धि करना चाहते हैं। इसीलिए उन्होंने कल सबेरे दरबारमें सब सामन्तोंको बुलवाया है; साथ ही आप भी बुलाये गये हैं।

गोविन्द०—मुझे उन्होंने किस लिए बुलाया है ?

अजय०—सलाह करनेके लिए।

गोविन्द०—सन्धिके सम्बन्धमें सलाह करनेके लिए ?

अजय०—जी हाँ।

गोविन्द०—लेकिन अजय, आज तक तो मैंने कभी सन्धिके सम्बन्धमें कोई बातचीत की ही नहीं। लगातार पच्चीस वर्षोंसे मैं तो केवल युद्ध ही करता आया हूँ। मैं तो केवल तलवारोंकी झनकार, भेरियोंका भैरव-निनाद,

घोड़ोंका हींसना, घायलोंका चिल्लाना और छटपटाना जानता हूँ। इतने दिनोंसे मैं तो केवल ये ही सब बातें देखता आया हूँ। शत्रुके साथ सन्धि तो मैंने आज तक देखी ही नहीं। मैं तो यह भी नहीं जानता कि सन्धि कैसे की जाती है। (अजयसिंह चुपचाप खड़े रहते हैं; कोई उत्तर नहीं देते। गोविन्दसिंह सिर नीचा करके कुछ सोचते हैं और तब फिर पूछते हैं—) राणाजीने तुमसे यह भी कहा है कि वे क्यों सन्धि करना चाहते हैं ?

अजय०—उन्होंने कहा था कि इधर कई वर्षोंसे मेवाड़की दशा बहुत कुछ सुधर गई है; अब इस धन-धान्य-पूर्ण और सुन्दर देशमें व्यर्थ रक्तपात करना ठीक नहीं।

गोविन्द०—इसीलिए मुगलोंकी जूतियाँ सिरपर रखनी चाहिए ? जिस दिन विलासने आकर स्वर्गीय महाराणा प्रतापसिंहकी स्वेच्छा-गृहित दरिद्रताके स्थानपर बलपूर्वक अधिकार किया था, उसी दिन मैंने समझ लिया था कि मेवाड़का पतन बहुत दूर नहीं है। उस महापुरुषने मरनेके समय कहा था कि हमारे पुत्र अमरसिंहके राजत्व-कालमें मेवाड़ देश मुगलोंके हाथ बिक जायगा। मुगल भी शक्ति-मदसे पागल और अन्धे हो रहे हैं। चलो, इस बार सर्वस्व नष्ट हो जायगा।

अजय०—राणाजीने भी तो यही कहा था कि अब मुगलोंका मुकाबला करना मेवाड़के लिए असम्भव है; इसलिए व्यर्थ रक्तपात क्यों किया जाय ?

गोविन्द०—अजय, क्या तुम भी उन्हींकी तरह हो गये ? क्या तुम चाहते हो कि हम लोग दास होकर जूएँमें गला फँसा दें ? मैं जानता हूँ कि मुगल दिल्लीके बादशाह हैं; और बादशाहके विरुद्ध विद्रोह करना पाप है। लेकिन मेवाड़ राज्य तो अभी तक स्वाधीन है। जब तक गोविन्दसिंहके शरीरमें प्राण हैं, तब तक उसकी स्वाधीनता नष्ट न होने पायगी। लगातार सात सौ वर्षोंसे मेवाड़की जो रक्त-ध्वजा हजारों आँधियों और बिजलियोंकी परवा न करके अभिमानपूर्वक उड़ रही है, यह क्या केवल मुगलोंकी लाल लाल आँखें देखकर गिर जायगी ? कभी नहीं। तुम जाओ और राणाजीसे कह दो कि मैं आता हूँ।

(जयसिंह जाते हैं।)

(अजयसिंहके चले जानेपर गोविन्दसिंह दीवारपरसे टँगी हुई तलवार उतारते हैं, उसे धीरे धीरे म्यानसे बाहर निकालते हैं और तब उसे संबोधन

करके कहते हैं—) "मेरी प्यारी साथ देनेवाली, देखो जब तक तुम मेरे हाथमें रहो, तब तक महाराणा प्रतापसिंहका अपमान न होने पावे। प्यारी, इतने दिनों तक मैं तुम्हें भूल गया था, शायद इसीलिए तुम इतनी मलीन हो रही हो। लेकिन तुम व्याकुल मत होओ। इस बार मैं तुम्हें अपने साथ मेवाड़के युद्धमें ले चलूँगा। तुम्हें मुगलोंका गरमागरम लहू पिलाऊँगा। तुम मुझे क्षमा करो और मुझसे गले मिलो।" (तलवारको कलेजेसे लगाते हैं और धीरे धीरे घुमानेकी चेष्टा करते हैं। फिर कहते हैं—) "नहीं, हाथ काँपता है। जान पड़ता है कि अब मुझसे तुम्हारी मर्य्यादाकी रक्षा न हो सकेगी। अब मैं बहुत वृद्ध हो गया हूँ।" (तलवार रखकर और दोनों हाथोंसे सिर पकड़कर बैठ जाते हैं। आँखोंमेंसे आँसू निकल पड़ते हैं। तब कहते हैं—) "ईश्वर, यह तुमने क्या किया?" (खड़े होकर तलवार उठाते हैं। इतनेमें उनकी कन्या कल्याणी आ जाती है।)

कल्याणी—पिताजी, यह क्या है?

गोविन्द०—यह तलवार है बेटी, देखो।

कल्याणी—नहीं पिताजी, आप उसे रख दीजिए। आज आपने अचानक हाथमें तलवार क्यों ले ली? आप उसे रख दीजिए। आपके हाथमें तलवार देखकर मुझे डर लगता है।

गोविन्दसिंह—(तलवारकी नोक जमीनपर टेक देते हैं और प्रेमभरी दृष्टिसे उसकी ओर देखकर कल्याणीसे कहते हैं,—) "देखो कल्याणी, यह तलवार कैसी भयंकर और कैसी सुन्दर है! जानती हो, यह क्या माँगती है?"

कल्याणी—नहीं, क्या माँगती है?

गोविन्द०—लहू।

कल्याणी—किसका?

गोविन्द०—मुसलमानोंका।

कल्याणी—लेकिन पिताजी, मुसलमानोंपर आपका इतना क्रोध क्यों है?

गोविन्द०—इसका कारण तुम अपनी जन्मभूमि मेवाड़से पूछो। सात सौ वर्षोंसे मुसलमान बार बार इस स्वाधीन राज्यको अपने अधीन करनेके लिए राक्षसोंकी तरह उसपर टूटते हैं, लेकिन जिस तरह पहाड़से टकराकर समुद्रकी लहरें लौट जाती हैं, उसी तरह वे भी हर बार लौट जाते हैं। कोई पूछे, इस बेचारे मेवाड़ने उनका क्या अपराध किया है? लेकिन जब

मनुष्य शक्ति-मदसे अन्धा हो जाता है, तब उसे न्याय और अन्याय कुछ नहीं सूझता। उस समय यह तलवार ही उसे अन्याय करनेसे रोक सकती है। लेकिन हाय कल्याणी! क्या कहूँ, अब मैं बहुत बूढ़ा हो गया हूँ।

(कल्याणी रोती है।)

गोविन्द०—क्यों कल्याणी, तुम रोती क्यों हो? क्या तुम्हें डर लगता है? डरो मत। मैं इसे म्यानमें रख देता हूँ। (तलवारको म्यानमें रखकर) जाओ, तुम अंदर जाओ। मैं भी जाता हूँ।

(गोविंदसिंहजी चले जाते हैं।)

कल्याणी—पिताजी, यदि आप कुछ सोचते, कुछ समझते—

दूसरा दृश्य

स्थान—उदयपुरकी एक सड़क। **समय**—तीसरा प्रहर

[कई चारणोंके साथ सत्यवती गाती है—]

भैरवी

है मेवाड़ पहाड़ ये जूझा जहाँ सिंह परताप।
अटल रहा पर्वत-सा यद्यपि सहे घोर सन्ताप॥
धधकी रूपाग्नि पदमिनिकी जहाँ प्रबल चहुँओर।
कूद पड़ी थी जिसमें सेना यवनोंकी घनघोर॥

है मेवाड़ पहाड़ ये जिसकी लाल धजा फहराती है॥
दर्प पुराना चूर किया है यवनोंका, बतलाती है॥

है मेवाड़ पहाड़ यही जहँ लाल हुआ है नीर।
रक्त बहा मर मिटे जहाँ हैं लाखों छत्री वीर॥
म्लेच्छराजको गढ़ चितौरसे मार भगाया दूर।
हर लाया उसकी कन्याको बाप्पा रावल सूर॥

है मेवाड़ पहाड़ ये जिसकी लाल धजा फहराती है॥
दर्प पुराना चूर किया है यवनोंका बतलाती है।

है मेवाड़ पहाड़ ये गलता बन करके नित छीर।
मधुर सुखद हैं सबसे जिसके अन्न फूल फल नीर॥

कुंजोंमें करते हैं कलरव जहाँ सारिका कीर।
काननमें जहँ बहै सुगन्धित शीतल मन्द समीर ॥
है मेवाड़ पहाड़ ये जिसकी लाल धजा फहराती है।
दर्प पुराना चूर किया है यवनोंका, बतलाती है ॥
नभको इस मेवाड़-शैलका शिखर रहा है चूम।
भरी हुई है स्वर्गज्योतिसे यह सारी वन-भूम ॥
वनफूलोंसे ललनायें सब करती हैं सिंगार।
दयावती पतिव्रता साहसिनि नहिं ऐसी संसार ॥
है मेवाड़ पहाड़ ये जिसकी लाज धजा फहराती है।
दर्प पुराना चूर किया है यवनोंका, बतलाती है ॥

[इतनेमें अजयसिंह वहीं आ पहुँचते हैं।]

सत्यवती—क्या आप सैनिक हैं ?

अजय०—हाँ, मैं मेवाड़का एक सेनापति हूँ।

सत्यवती—मैं आपसे एक बात पूछना चाहती हूँ। मैंने जो कुछ सुना है, क्या वह सत्य है ?

अजय०--तुमने क्या सुना है ?

सत्यवती—यही कि मुगल-सेना फिर मेवाड़पर आक्रमण करनेके लिए आ रही है।

अजय०—अभी आ तो नहीं रही है; पर हाँ, यदि राणाजी सन्धि न करेंगे, तो वह अवश्य आकर आक्रमण करेगी। मुगल-सेनापतिने यही जाननेके लिए अपना एक दूत भेजा है कि राणाजी लड़ेंगे या सन्धि करेंगे।

सत्यवती—क्या आप लोग युद्धके लिए तैयार हैं ?

अजय०—राणाजी जैसी आज्ञा देंगे हम लोग वैसा ही करेंगे। युद्ध या सन्धि राणाजीकी इच्छापर निर्भर है।

सत्यवती--क्या आपको कुछ मालूम है कि राणाजी युद्ध करेंगे या सन्धि ?

अजय०—नहीं। पर तो भी जहाँ तक मैं समझता हूँ राणाजी सन्धि करना चाहते हैं। इसी सम्बन्धमें परामर्श करनेके लिए उन्होंने मुझे पिताजीको बुलाने भेजा था।

सत्यवती—आपके पिता कौन हैं ?

अजय०—मेवाड़के प्रधान सेनापति गोविंदसिंह ।

सत्यवती—आप सेनापति गोविंदसिंहके पुत्र हैं ? भला बतलाइए तो सही, उनकी क्या इच्छा है ?

अजय०—वे तो युद्ध करना चाहते हैं ?

सत्यवती—बहुत ठीक। मैंने आपको कष्ट दिया। अब आप जा सकते हैं।

(अजयसिंह वहाँसे चले जाते हैं।)

सत्यवती—सन्धि ? क्या राणा प्रतापसिंहके पुत्र मुगलोंके साथ सन्धि करनेका विचार करते हैं ? नहीं, यह कभी नहीं हो सकता, अवश्य ही इसमें कुछ भ्रम हुआ है। (चारणोंसे) तुम लोग इसी पेड़के नीचे मेरी राह देखना। मैं अभी आती हूँ।

(तब चारण एक ओर जाते हैं और सत्यवती दूसरी ओर।)

तीसरा दृश्य

स्थान—उदयपुरमें मेवाड़की राजसभा। समय—प्रभात।

[सिंहासनपर राणा अमरसिंह बैठे हैं। उनके दोनों ओर और सामने सामन्त लोग हैं। गोविंदसिंह एक तरफ खड़े हैं।]

जयसिंह—महाराज, इस, विषयमें राजपूतोंमें कोई मतभेद नहीं है कि जब मुगल सेना मेवाड़ तक पहुँच गई है, तब हम लोगोंको क्या करना चाहिए। हम लोग लड़ेंगे।

राणा—जयसिंह, यह छोटा-सा राज्य किसके बलपर इतने बड़े बादशाह शाहंशाह जहाँगीरकी विराट् मुगल-सेनाका सामना करेगा ?

जयसिंह—महाराज, क्षत्रियोंकी शूरताके बलपर।

कृष्णदास—महाराजके स्वर्गीय पिता महाराणा प्रतापसिंहजीने किसके बलपर मुगलोंका सामना किया था ?

राणा—उनकी बात छोड़ दो। वे मनुष्य नहीं थे।

शंकर—वे रजपूत ही तो थे !

राणा—नहीं, शंकर, वे मनुष्य नहीं थे। वे केवल एक दैवी शक्तिकी तरह, आकाशके वज्रपातकी तरह, पृथ्वीके भूकम्पकी तरह, समुद्रकी लहरकी तरह हम लोगोंमें अचानक आ गये थे। कोई नहीं कह सकता कि वे कहाँसे आये थे और कहाँ चले गये। सब लोग उनकी बराबरी नहीं कर सकते।

कृष्णदास—यह बात ठीक है कि सब लोग उनकी बराबरी नहीं कर सकते, पर तो भी सब लोग यह आशा अवश्य रखते हैं कि उनके पुत्र उन्हींका अनुकरण करेंगे। स्वर्गीय महाराणाजीने मेवाड़की स्वाधीनताकी रक्षाके लिए अपने प्राण दिये और उनके पुत्र बगैर लड़े-भिड़े ही मुगलोंकी अधीनता स्वीकार कर लेंगे?

राणा—कृष्णदास, यह एक सुन्दर अनुभूति मात्र है। इधर कई वर्षोंसे मेवाड़की प्रजा धनी, सुखी और सम्पन्न हो गई है। राज्यमें बहुत शांति विराज रही है। क्या केवल उसी अनुभूतिके लिए इतने सुख, इतनी स्वच्छ-न्दताका नाश कर दिया जाय? जब कि केवल नाम मात्रका कर दे देनेसे ही इतने रक्तपातसे रक्षा हो सकती है, तो व्यर्थ हत्यायें क्यों हों?

शंकर—महाराज, हम लोग कर देंगे? किसे? मुगलोंको? वे कर लेनेवाले होते कौन हैं? वे किस अधिकारसे भगवान् रामचन्द्रके वंशधरोंसे कर चाहते हैं?

राणा—थोड़ा-सा कर देकर इस सुख, शांति और स्वच्छन्दताकी रक्षा करना अच्छा है, या कर न देकर इन सबको खो बैठना? गोविन्दसिंहजी, आपकी क्या सम्मति है?

गोविंद०—(चौंककर) भला, मैं इस विषयमें क्या सम्मति दूँगा? मैं कुछ नहीं कह सकता और न मैं इन सब बातोंको समझता ही हूँ। मैं तो जानता ही नहीं कि सुख, शांति स्वच्छन्दता किसे कहते हैं। मैं केवल दुःख जानता हूँ। बाल्यावस्थासे ही मेरा और दुःखका साथ रहा है, विपत्तिकी गोदमें ही मैं पला हूँ। महाराज, मैं बराबर पचीस वर्ष तक स्वर्गीय महाराणाजीके साथ जंगलों पहाड़ोंमें भूखा प्यासा घूमता रहा हूँ। उस महात्माकी सेवामें रहकर पचीस वर्षोंमें दरिद्रताके व्रतका ही अभ्यास किया है। उन पचीस वर्षोंमें मैंने दुःखका ही परम सुख भोगा है। उस सुखका क्या पूछना है! दूसरोंके लिए दुःख भोगनेमें कैसा सुख मिलता है! कर्त्तव्यका पालन करनेके लिए दरिद्रता भोगना कैसी अच्छी बात है! प्रातःकाल सूर्य्यकी सुनहरी किरणें जिस स्नेहके साथ उस दरिद्रताकी कुटीपर पड़ती हैं, उस स्नेहके साथ शायद और कहीं भी न पड़ती होंगी। महाराज, मेरे कैसे अच्छे दिन निकल गये! (बोलते बोलते रुक जाते हैं।)

जयसिंह—गोविंदसिंहजी, बीचहीमें चुप क्यों हो रहे? कहिए, आगे कहिए।

गोविंद०—क्या कहूँ? कुछ कहा नहीं जाता। मैंने उसी मेवाड़में उस देवताकी कुटियाको टूटते हुए और उसके स्थानपर भोगविलासके लिए नाट्यभवन बनते हुए देखे हैं। उसी महात्माके पवित्र मन्दिरको तोड़कर उसीके पत्थरोंसे ऐश्वर्य्यके प्रासाद बनते हुए देखे हैं। जो पहाड़ किसी दिन जयध्वनिसे गूँजा करता था, जो पहाड़ कीर्तिके कारण ही महत् और पवित्र हुआ था, उसकी छायामें अब विलासके निकुंज-वन बनते देखे हैं। मैंने अपनी इस क्षीण दृष्टिसे उस महत्त्वको धुआँ बनकर अकाशमें मिलते हुए देखा है। जयसिंहजी, सब कुछ गया और बचा ही क्या है! अब तो उस महिमाकी बची-खुची किरणें ही हैं। अब तो वह महत्त्व अधमरा और मृत्युशय्यापर पड़ा करुणाभरी दृष्टिसे हम लोगोंकी ओर टक लगाये, मृत्युकी प्रतीक्षा करता हुआ दिखाई पड़ता है।

केशव०—गोविंदसिंहजी, जब तक आप जीते हैं, तब तकि वह गौरव नष्ट नहीं हो सकता।

गोविंद०—मैं? केशवसिंहजी, अब भला मैं क्या करूँगा! अब मेरे वे दिन नहीं रहे, अब मैं बहुत ही बूढ़ा हो गया हूँ। बुढ़ापेके कारण अब मेरे हाथ काँपने लगे हैं। इन हाथोंसे तो अब मैं अच्छी तरह तलवार भी नहीं पकड़ सकता। इस पंजरकी क्षीण हड्डियाँ शरीरको खड़ा भी नहीं रख सकतीं। लेकिन महाराज, अब भी यही इच्छा होती है कि फिर उन्हीं जंगलों और पर्वतोंमें चला जाऊँ, मातृभूमिके लिए फिर वही मधुर दुःख भोगूँ, देश-भाइयोंके लिए फिर पहलेकी तरह जंगलोंमें मारा मारा फिरूँ। हाय ईश्वर! पर तुमने तो सहनेकी शक्ति भी छीन ली! (गोविन्दसिंह चुप हो जाते हैं। उन्हें चुप देखकर और कोई नहीं बोलता।)

राणा—लेकिन गोविंदसिंहजी, आप देखते हैं, सारे भारतवर्षने मुगल-सम्राट्के आगे सिर झुकाया है। तब, राजपूतानेका यह छोटा-सा राज्य मेवाड़, उनकी विशाल और विश्वविजयिनी सेनाके सामने क्या कर सकेगा? कहिए, क्या कहते हैं?

गोविन्द०—महाराज, मुझे जो कुछ निवेदन करना था, वह मैं पहले ही कर चुका हूँ। अब मुझे और कुछ नहीं कहना।

राणा—सामन्तगण, हमारी समझमें तो युद्ध व्यर्थ है। हम मुगल-सेनापतिके साथ सन्धि करेंगे। चोबदार, मुगल-दूतको बुलाओ।

(चोबदार जाता है।)

गोविन्द०—महाराणा प्रताप ! महाराणा प्रताप ! अच्छा हो, यदि तुम स्वर्गमें बैठे हुए यहाँकी ये बातें न सुन सको ! वज्र ! तुम अपने भैरव स्वरसे इस हीन उच्चारणको दबा दो ! और मेवाड़ ! मुगलोंकी प्रभुता स्वीकार करनेके पहले ही तुम किसी भारी भूकम्पसे ध्वंस हो जाओ !

[चोबदारके साथ मुगल-दूत आता है।]

राणा—तुम अपने सेनापतिसे जाकर कहो कि हम सन्धि करनेके लिए तैयार हैं।

[तेजीके साथ झपटती हुई सत्यवती आती है।]

सत्यवती—कभी नहीं, कभी नहीं। सामन्तगण, आप लोग युद्धके लिए तैयार हो जायँ। राणाजी यदि आप लोगोंको रणक्षेत्रमें न ले जायँ तो आप लोगोंकी सेनाका संचालन मैं करूँगी।

गोविन्द०—देवी, तुम कौन हो ? इस घोर अन्धकारमें बिजलीकी तरह आ खड़ी होनेवाली तुम कौन हो ? यह कोमल और गम्भीर वज्र-ध्वनि किसकी सुनाई पड़ती है ?

राणा—सच बतलाओ, तुम कौन हो ?

सत्यवती—महाराज, मैं एक चारणी हूँ। मैं मेवाड़के गाँवों और तराइयोंमें उसकी महिमा गाती फिरती हूँ, इससे अधिक मेरे किसी और परिचयकी आवश्यकता नहीं।

सामन्तगण—आश्चर्य !

सत्यवती—सामन्तगण, राणाजी उदयसागरके प्रासाद-कुंजमें पड़े पड़े विलासके स्वप्न देखा करें। मैं आप लोगोंको युद्ध-क्षेत्रमें ले चलूँगी।

गोविन्द०—यह क्या ! मेरे शरीरमें यह यौवनका तेज कहाँसे आ गया ! मुझमें यह आनन्द, यह उत्साह, कहाँसे आकर भर गया ! सामन्तगण, आप लोग महाराणा प्रतापके पुत्रकी इस अपयशसे रक्षा कीजिए। इस विलासको लात मारिए, इन सब खिलौनोंको नष्ट कर दीजिए। (पीतलका एक मीर-फर्श उठाकर गोविन्दसिंह पास ही लगे हुए एक बड़े शीशेपर फेंककर मारते हैं। शीशा चूर चूर हो जाता है।)

गोविन्दसिंह—सामन्तगण, आप लोग शस्त्र उठाइए। (राणाका हाथ पकड़कर) आइए महाराज।

राणा—गोविन्दसिंहजी, चलिए हम युद्ध करेंगे। मुगल-दूत, जाओ अपने मालिकसे जाकर कह दो कि हम लोग युद्ध करेंगे। चोबदार, हमारा घोड़ा तैयार कराओ।

सत्यवती—जय ! मेवाड़के राणाकी जय !

सामन्तगण—जय, मेवाड़के राणाकी जय !

चौथा दृश्य

स्थान—आगरेमें महाबतखाँका मकान। **समय**—प्रभात।

[सेनापति महाबतखाँ और मुगल सरदार अब्दुल्ला खड़े हुए बातें कर रहे हैं।]

महाबत०—क्या हिदायतखाँ सिपहसालार हो गये ?

अब्दुल्ला—जी-हाँ जनाब !

महाबत०—क्या इस बातको आप अच्छी तरह जानते हैं कि हिदायतखाँ सिपहसालार हो गये ?

अब्दुल्ला—जी-हाँ जनाब, मैं बहुत अच्छी तरह जानता हूँ कि बादशाह सलामतने उनके साथ पचास हजार फौज भेजी है।

महाबत०—कहाँ हिदायतखाँ और कहाँ सिपहसालारी ! आजकल लियाकत और काबिलीयतकी कदर नहीं होती। लायकोंकी बड़ी बुरी तरह बेकदरी हो रही है और इस गीले कूड़े-कचरेमेंसे न जाने कितने छत्रक (कुकरमुत्ते) जमीन फोड़कर निकल रहे हैं।

अब्दुल्ला—बेशक, आप सच कहते हैं। हिदायतअलीखाँ खानखाना बन बैठे—क्यों ?—इसलिए कि वे बादशाह सलामतके भानजे हैं।

महाबत०—वह भानजे हुआ करें, इसमें कोई हर्ज नहीं है। लेकिन इतनी बड़ी फौजकी सिपहसालारी आसान काम नहीं है। उनके साले इनायतखाँ भी तो उनके साथ ही हैं न ?

अब्दुल्ला—मुमकिन है, हाँ।

महाबत०—इनायतखाँ बेशक सिपाही आदमी है। वह जंग कर सकता

है। मालूम होता है, बादशाह सलामतने हिदायतखाँको बराय-नाम सिपह-सालार बना दिया है। असली सिपहसालार इनायतखाँ ही हैं।

अब्दुल्ला—जनाब, अगर किसीको बराय-नाम सिपहसालार बना दिया जाय, तो भी कमसे कम इतना तो ज़रूर होना चाहिए कि वह बन्दूककी आवाज़ सुनकर डर तो न जाय!

महाबत०—खैर। इस बार मेवाड़की लड़ाईमें सब पता लग जायगा।

अब्दुल्ला—क्या बादशाह सलामतने आपको भी मेवाड़की लड़ाईपर भेजनेके लिए याद फरमाया था?

महाबत०—हाँ सैयद साहब!

अब्दुल्ला—तब आप इस लड़ाईमें तशरीफ क्यों न ले गये?

महाबत०—बात यह है कि मेवाड़ मेरा वतन है। बादशाह सलामत मुझे बंगाल, गुजरात और दक्खिन जहाँ भेजें, मैं जानेको तैयार हूँ। लेकिन मेवाड़ जीतनेके लिए जाना मैं ठीक नहीं समझता।

अब्दुल्ला—ऐसी हालतमें जब कि मेवाड़ आपका वतन है आपका फरमाना बजा है। अच्छा, तो अब देर हो रही है मुझे इजाजत दीजिए, आदाब अर्ज करूँ।

महाबत०—तसलीम।

(अब्दुल्ला जाता है।)

महाबत०—चलो, यह अच्छा ही हुआ कि हिदायतखाँ सिपहसालार हो गये। खूब तमाशा देखनेमें आयगा। यह तो जबरदस्ती किसी भिखमंगेको पकड़कर बढ़िया सजे हुए घोड़ेपर सवार करा देना है। (जाते हैं।)

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—मुगलोंकी छावनी। **समय**—दोपहर।

[मुगल-सेनापति खानखाना हिदायतअली खाँ बहादुर अपने सरदार हुसेनके साथ बातें कर रहे हैं।]

हिदायत०—हें: हुसेन, इन काफिरोंको फतह करना तो मुरब्बा खानेसे भी आसान है।

हुसेन—जनाब आली, आप इस कामको जितना आसान समझ रहे हैं,

हकीकतमें उतना आसान नहीं है। लगातार सात-सौ बरससे मुसलमानी सल्तनतके सामने यह छोटी-सी रियासत बराबर सिर ऊँचा किये खड़ी रही है। यहाँ तक कि खुद अकबर बादशाह भी इसका सिर न झुका सके।

हिदायत०—हैं:; अकबर के पास कोई अच्छा सिपहसालार न होगा। हाँ, उस वक्त अगर खानखाना हिदायतअली खाँ होते तो दिखला देते!

हुसेन—क्यों जनाब, मानसिंह क्या कुछ कम थे?

हिदायत०—हैं:; बेचारे मानसिंहको क्या आता था! वह क्या लड़ सकता था?

[बावर्ची आता है।]

बावर्ची—खुदाबन्द, खाना तैयार है।

हिदायत०—अगर मानसिंह सिपहसालार हो सकता था, तो हमारे बावर्ची जाफर मियाँ भी सिपहसालार हो सकते हैं! क्यों जी जाफर मियाँ?

जाफर—हुजूर, खाना तैयार है।

हिदायत०—तुम फौजके साथ लड़ सकते हो?

जाफर—हुजूर, मुरगीका कोफता।

हिदायत०—हाँ, हाँ, हम समझते हैं, तुमने बहुत अच्छा किया जो मुरगीका कोफता तैयार किया। लेकिन मैं पूछता हूँ कि तुम जंग कर सकते हो?

जाफर—कबाब? हुजूर, वह भेड़का है।

हिदायत०—बहुत ठीक, अब हम भी यहाँ भेड़का कबाब बनायँगे। अच्छा तुम चलो, हम आते हैं।

(जाफर जाता है।)

हिदायत०—हुसेन, अब यहाँ भेड़का कबाब बनेगा!

हुसेन—किस भेड़का?

हिदायत०—किस भेड़का? इन्हीं राजपूतोंका। ये भी तो भेड़े ही हैं।

हुसेन—जनाब, माफ़ कीजिए। इस बारेमें मैं आपकी रायसे इत्तफाक नहीं करता।

हिदायत०—हुसेन, अभी तुम्हें बहुत कुछ सिखाने पढ़ानेकी ज़रूरत है। अब तुम हमारे साथ आये हो। ज़रा अच्छी तरह सीख लो कि लड़ना किसे कहते हैं। आगे चलकर काम आयेगा।

हुसेन—बहुत बेहतर जनाब। बड़े बड़े हाथी तो बह गये, अब देखना है कि 'मच्छर' मियाँ क्या करते हैं!

हिदायत०—हुसेन, मैं देखता हूँ कि तुम बहुत गुस्ताख और बेअदब होते जा रहे हो। तुम जानते नहीं, मैं सिपहसालार हूँ। अगर चाहूँ, तो अभी तुम्हारा सिर कटवा डालूँ।

हुसेन—जी नहीं जनाब, मैं खूब जानता हूँ कि आप सिपहसालार हैं।

हिदायत०—हाँ, हमेशा याद रखना कि मैं सिपहसालार हूँ।

हुसेन—जी हाँ, मैं हमेशा याद रक्खूँगा। लेकिन मेवाड़ फतह करना—

हिदायत०—फिर वही मेवाड़ फतह करनेकी बात! हुसेन, तुम मेरे दोस्त हो, इसीलिए मैं तुमसे कहता हूँ कि मेरी नजरमें मेवाड़ फतह करना एक चुटकी बजाने जैसा काम है।

हुसेन—यदि ऐसा है, तो उसे एक बहुत बड़ी चुटकी कहनी चाहिए।

हिदायत०—नहीं, बहुत ज्यादा बड़ी नहीं। अच्छा जाओ, अब हम खाना खाने जाते हैं। (हुसेन जाना चाहता है। हिदायत उसे फिर बुलाता है।) हाँ हुसेन, ज़रा एक बात सुनते जाना। देखो, हमेशा इस बातका ख्याल रखना कि हम सिपहसालार हैं।

हुसेन—बहुत बेहतर जनाब।

हिदायत०—जाओ।

(हुसेन जाता है।)

हिदायत०—भला इन काफिरोंका जीतना क्या मुश्किल है! इनके साथ तो लड़नेकी भी नौबत न आवेगी। जहाँ तोपों और बन्दूकोंकी दो-चार आवाजें हुईं, सब भागते नज़र आवेंगे। किसीका पता भी न लगेगा।

(अकड़ते हुए प्रस्थान)

छट्ठा दृश्य

स्थान—उदयपुरके उदयसागरका किनारा। **समय**—प्रभात

[मेवाड़की राजकन्या अकेली घूमती हुई गा रही है।]

राग कालिंगड़ा

बनि आई भिखारनि तेरी।
हियमें प्रेम भरो है मेरे, मोहि बनावहु चेरी॥

जबसों लगन लगी है तोसों, खान-पान बिसरे री।
क्यों रोऊँ जब जानति दोनों, बँधे प्रेमकी बेरी ॥
और कछु नहीं चाहत तोसों, केवल प्रीति घनेरी।
मिलहु आय अब प्रान-पियारे, पूजे आसा मेरी ॥

[एक अन्धे बालकके साथ एक भिखारिणी आती है ।]

भिखारिणी—दाताकी जय हो!

मानसी—क्यों जी, यह तुम्हारा लड़का है?

भिखारिणी—नहीं, यह मेरी बहनका लड़का है। यह जन्मसे ही अन्धा है, इसकी माँ मर गई है।

मानसी—इसका बाप है?

भिखारिणी—है तो, पर परदेश गया है।

मानसी—आह! कैसा प्यारा लड़का है। क्या यह हमें दोगी?

भिखारिणी—यह मुझे छोड़कर अकेला नहीं रह सकता सरकार।

मानसी—अच्छा, तुम इसे अपने पास रक्खो। पर इसे रोज मेरे पास ले आया करो। यह लो। (एक अशर्फी देती है।)

भिखारिणी—सरकारकी जय हो, राज बना रहे।

(बालकको साथ लेकर भिखारिणी चली जाती है।)

मानसी—इस भिखारिणीका 'जय हो' कहना, कितना मधुर जान पड़ता है। यह जय-भेरीसे भी प्रबल, माताके आशीर्वादसे भी अधिक स्निग्ध और बालकके मुँहसे पहले-पहल निकली हुई वाणीसे भी बढ़कर मधुर है।

[अजयसिंह आते हैं।]

अजय०—मानसी!

मानसी—अजय, आओ आओ, इस समय मैं बहुत ही प्रसन्न हूँ। मेरी इस प्रसन्नताका कुछ अंश तुम भी लो।

अजय०—तुम्हारी इस प्रसन्नताका क्या कारण है?

मानसी—मेरी प्रसन्नता परिपूर्ण है। शरत्कालकी नदीसे भी बढ़कर परिपूर्ण है। आज एक भिखारिणी मुझे आशीर्वाद दे गई है।

अजय०—भला संसारमें ऐसा कौन होगा जो तुम्हें हृदयसे आशीर्वाद न देगा? मैं तो नित्य ही गलियों और बाज़ारोंमें लोगोंके मुँहसे मेवाड़की राजकुमारीकी प्रशंसा सुना करता हूँ।

मानसी—तुम रोज सुनते हो ? यदि ऐसा होता, तो अजय, क्या मैं एक दिन भी उसे न सुन सकती ?

अजय०—एक दिन घरसे बाहर निकलो, अवश्य सुन सकोगी।

मानसी०—मैं तो घरसे बाहर निकलती हूँ। अजय, मैंने यहाँ एक अतिथिशाला खोल रक्खी है। वहाँ मैं नित्य जाती हूँ और अपने हाथसे अतिथियोंको भोजन कराती हूँ। उन्हें बिना अपने हाथसे खिलाये मेरा जी नहीं मानता।

अजय०—मानसी, तुम्हारा जीवन धन्य है। मानसी, आज मैं तुमसे बिदा होनेके लिए आया हूँ।

मानसी—क्यों ? कहाँ जाओगे ?

अजय०—युद्धमें।

मानसी—कब जाओगे ?

अजय०—कल सबेरे।

मानसी—वहाँसे कब लौटोगे ?

अजय०—कुछ ठीक नहीं। यह भी नहीं कह सकता कि लौटूँगा या नहीं।

मानसी—क्यों ?

अजय०—सम्भव है कि युद्धमें मारा जाऊँ।

मानसी—ओह ! (सिर नीचा कर लेती है।)

अजय०—मानसी, यदि मैं न लौटा तो ?

मानसी—तो क्या होगा ?

अजय०—तुम्हें दुःख होगा या नहीं ?

मानसी—होगा।

अजय०—इतनी उदासीनता ! मानसी, तुम जानती हो—

मानसी—क्या जानती हूँ ?

अजय०—यह कि तुमपर मेरा कितना प्रेम है ?

मानसी—हाँ, यह तो मैं जानती हूँ कि तुम्हारा बहुत प्रेम है।

अजय०—क्या मुझपर तुम्हारा प्रेम नहीं है ?

मानसी—है।

अजय०—नहीं, तुम्हारा प्रेम किसी और पर है ?

मानसी—है, मनुष्य-मात्रपर है।

अजय०—निठुर ! निर्दय !

मानसी—क्यों अजय, क्या तुम चाहते हो कि मैं केवल तुम्हींपर प्रेम करूँ और किसीपर प्रेम न करूँ ? क्या तुम अकेले ही मेरे सारे हृदयपर अधिकार कर लेना चाहते हो ? तब तो तुम बड़े ही स्वार्थी जान पड़ते हो।

अजय०—मानसी, क्या तुम अभी तक इतनी अनजान और अबोध हो ?

मानसी—तुम मुझसे नाराज क्यों होते हो अजय ? इसमें मेरा क्या अपराध है ? क्या मनुष्य-मात्रपर प्रेम करना ही अपराध है ? यदि यही अपराध हो, तो तुम मुझे इसका दण्ड दो। मैं उसे भोगनेके लिए तैयार हूँ।

अजय०—तुम्हें दण्ड दूँगा—मैं ?

मानसी—हाँ, तुम दण्ड दो। अजय, आज तुम युद्धपर जा रहे हो। इस युद्धमें तुम जितनी ही अधिक हत्या करोगे, लोग उतनी ही अधिक तुम्हारी प्रशंसा करेंगे। उसी तरह मैं जितना ही अधिक प्रेम करूँगी, क्या उतना ही अधिक मेरा अपराध होगा ?

अजय०—मानसी, तुम सारे संसारपर प्रेम करो, अपने उदार हृदयमें सारे विश्वको रख लो। अब मैं तुमसे कुछ न कहूँगा। मैं बड़ा मूर्ख हूँ, जो तुम्हारे आकाशके समान हृदयको अपने तुच्छ और क्षुद्र हृदयमें बन्द कर रखना चाहता हूँ। मुझे क्षमा करो। मानसी, अच्छा, अब मैं विदा होता हूँ।

मानसी—अच्छा अजय, जाओ। सारे जगतमें अन्याय और अत्याचार छाया हुआ है। उसे दूर करनेके लिए कभी कभी युद्ध करना अनिवार्य्य हुआ करता है। लेकिन युद्ध बड़ी ही निष्ठुरताका काम है। उसमें जहाँ तक हो सके अपने आपको पवित्र रखना।

[अजयसिंह जाते हैं।]

मानसी—जाओ अजय, तुम रण-क्षेत्रमें जाओ। मेरी शुभ-कामना कवचकी तरह तुम्हारी रक्षा करे। पर जो लोग युद्धमें मारे जायँगे, उनका क्या होगा ? क्या उनकी स्त्रियाँ, मातायें और कन्यायें भी ठीक इसी प्रकार भगवानसे उनके मंगलके लिए प्रार्थना न करती होंगीं ? न जाने उनमेंसे कितनोंकी प्रार्थनायें निष्फल होंगी और कितनोंकी साधनायें व्यर्थ होंगीं। क्या इसका कोई प्रतिविधान नहीं ? (आँखोंसे आँसू भरकर आकाशकी ओर देखती है। थोड़ी देर बाद उसका मुख प्रसन्न हो जाता है और वह ताली

बजाती हुई कहती है—) अच्छा, अब मैं भी एक काम करूँगी। जो युद्धमें मरेंगे, उनकी तो मैं कोई सहायता न कर सकूँगी। पर हाँ, जो लोग घायल होंगे, उनकी सेवा-शुश्रूषा करूँगी। बस, मैं यही काम करूँगी। इसमें हर्ज़ ही क्या है ? मैं यही करूँगी।

[रानी रुक्मिणीका प्रवेश]

रानी—कुछ सुना मानसी ?

मानसी—क्या ?

रानी—तुम्हारे पिता युद्धमें गये हैं।

मानसी—हाँ, सुना है।

रानी—मुगलोंके साथ युद्ध करने गये हैं।

मानसी—हाँ, सुना है।

रानी—वाह ! कैसी उदासीनतासे तुम कह रही हो—'हाँ सुना है, मानो यह कोई मक्खन खानेके समान सुकोमल समाचार है। जानती हो, युद्धमें हजारों लोग मारे जाते हैं ?

मानसी—हाँ, हो सकता है।

रानी—हो सकता है नहीं, होता है। इस बार बादशाहकी सेनाके साथ युद्ध होगा। अबकी बार सर्वस्व गया समझो। जो लोग युद्धमें गये हैं, वे तो मारे ही जायँगे और जो लोग नहीं गये हैं, उनकी भी न जाने क्या दशा होगी।

मानसी—तो भला इसमें मैं क्या कर सकती हूँ ?

रानी—मैंने तुम्हारे ब्याहकी बातचीत पक्की की थी। पर अब इधर ब्याहका समय न मिलेगा। ऐसी गड़बड़ीमें कहीं ब्याह होता है ?

मानसी—नहीं सही।

रानी—नहीं सही ? यदि ब्याह न होगा, तो क्या होगा ?

मानसी—अच्छा ही होगा।

रानी—भला, यह भी कहीं हो सकता है ? लड़कियोंका ब्याह हुए बिना कहीं काम चल सकता है ? जोधपुरके राजकुमारके साथ तुम्हारे ब्याहकी बात-चीत पक्की की गई थी। पर अब ब्याह न हो सकेगा। सब जायँगे, सब मरेंगे। पहले ब्याह करके तब लड़ाई छेड़ते; पर राणाजीने मेरी बात ही न मानी।

मानसी—माँ, तुम चिन्ता न करो। मैंने अपने लिए एक ब्याहसे भी बढ़कर काम करनेका निश्चय किया है।

रानी—वह क्या ?

मानसी—मैं युद्धक्षेत्रमें जाऊँगी।

रानी—किस लिए ?

मानसी—माँ, तुमने अभी कहा था न कि युद्धमें बहुतसे लोग मरते हैं। जो लोग मर जायँगे, उनकी तो मैं कोई सहायता न कर सकूँगी, पर हाँ जो लोग घायल होंगे, उनकी सेवा करूँगी।

रानी—बुरा हुआ! जान पड़ता है, अजय, तुम्हें यही बात सिखला गया है।

मानसी—नहीं, इसमें उनका कोई दोष नहीं है। अजय तो लोगोंको मारने जाते हैं; पर मैं रक्षा करने जाऊँगी।

रानी—नहीं। भला यह भी कहीं हो सकता है ?

मानसी—यह तो बहुत अच्छी तरह हो सकता है।

रानी—नहीं, तुम वहाँ न जाने पाओगी।

मानसी—माँ, तुम निश्चिन्त रहो। मैं अवश्य जाऊँगी। तुम तो जानती ही हो कि जब मुझे कर्तव्य पुकारता है, तब मैं किसीकी बात नहीं सुनती। अब तुम जाओ, मैं चलनेकी तैयारी करूँगी।

रानी—तुम किसके साथ जाओगी ?

मानसी—अजयसिंहकी सेनाके साथ।

रानी—जो सोचा था वही हुआ। राणाजी भी इस समय चले गये। अब इसे कौन समझावे!

मानसी—यदि पिताजी यहाँ होते, तो वे इस कामसे मुझे कभी न रोकते। मैं उन्हें अच्छी तरह जानती हूँ। वे बहुत दयालु हैं।

रानी—वे तुम्हें किसी बातके लिए मना नहीं करते थे, इसीसे तो तुम इतनी मनमानी करती हो। गया, सर्वस्व गया। मैं जानती हूँ, कोई भारी उपद्रव अवश्य होगा।

मानसी—माँ, तुम जरा भी चिन्ता न करो। एक मनुष्य दूसरे मनुष्यपर अत्याचार करता है। जहाँ तक हो सकेगा, मैं उस अत्याचारको कम करूँगी। माँ, अब तुम जाओ, कोई चिन्ताकी बात नहीं है।

रानी—अब पूरा पूरा कलियुग आ गया! (जाती है)

भानसी—यह इच्छा मेरे मनमें किसने उत्पन्न की ! पहले यह ज्योति मेरे अन्तकरणके एक कोनेमें झिलमिला रही थी; पर अब हृदयमें उसका पूरा पूरा पूरा प्रकाश छा गया है। यह एक नया उत्साह है, परम आनंद है ! ब्याहका सुख इसके सामने क्या चीज है !

सातवाँ दृश्य

स्थान—मेवाड़का युद्धक्षेत्र। **समय**—सन्ध्या।

[हिदायत अली एक खेमेंमें बैठे हुए हुसेनसे बातें कर रहे हैं। बाहर युद्धका कोलाहल हो रहा है। दरवाजेपर दो सिपाही नंगी तलवार लिये खड़े हैं।]

हिदायत०—हुसेन, तुमने कुछ अंदाज लगाया कि मेवाड़की फौज कितनी होगी ?

हुसेन—करीब पचास हजार होगी।

हिदायत०—हाँ ाँ ाँ, लेकिन राजपूत अभी तक भाग नहीं रहे हैं ?

हुसेन—जी नहीं जनाब।

हिदायत०—सुबहसे लड़ रहे हैं; मगर अभी तक भागते नजर नहीं आते ?

हुसेन—नहीं, उन्होंने ठान लिया है कि लड़ेंगे और खूब जमकर लड़ेंगे।

हिदायत०—मालूम होता है, वे लोग कुछ कुछ लड़ना जानते हैं।

हुसेन--जी हाँ, कुछ आसार तो ऐसे ही नजर आते हैं।

हिदायत०—यह तो राजपूतोंकी ही आवाज आ रही है। हमारे सिपाही तो कुछ चिल्लाते बिल्लाते ही नहीं। वे लड़ते तो हैं न ?

हुसेन—लड़ेंगे क्यों नहीं ! जरा एक बार बाहर निकलकर आप ही क्यों नहीं देख लेते ? आप तो सिपहसालार हैं।

हिदायत०—हाँ, मैं सिपहसालार तो जरूर हूँ; मगर खेमेसे मेरे बाहर निकलनेकी जरूरत ही न पड़ेगी। मेरा साला इनायतखाँ अकेला ही इन लोगोंके लिए काफी है। ये बेचारे मेरे साथ क्या लड़ेंगे ?

हुसेन—हाँ जनाब, यह तो ठीक ही है। पर देखिए, राजपूत लोग फिर गर्ज रहे हैं ! यह लीजिए, फिर उन्हींकी आवाज आई ! जनाब, आसार तो अच्छे नज़र नहीं आते।

हिदायत०—जरा बाहर देखो तो सही कि क्या हो रहा है।

हुसेन—बहुत बेहतर !

हिदायत०—मगर नहीं, तुम यहीं रहो। मुझे यह बहुत ही बुरी आदत पड़ गई है कि शामके बाद मैं अकेला नहीं रह सकता।

हुसेन—हाँ, इसे खराब आदतके सिवा और कुछ कह ही क्या सकते हैं!

हिदायत०—यह देखो, फिर शोर हो रहा है।

हुसेन—यह तो और भी नज़दीक मालूम होता है।

हिदायत०—क्या कहा ?

हुसेन—जनाब, मालूम होता है, कोई इधर ही आ रहा है।

हिदायत०—हैं ! कोई आता है ? (हुसेनको पकड़ लेता है।)

[एक सिपाही आता है।]

हिदायत०—क्या खबर लाये ?

सिपाही—खुदावन्द, फौजदार शमशेरखाँ मारे गये।

हिदायत—ऐं !

हुसेन—और बाकी दूसरे अफसर ?

सिपाही—लड़ रहे हैं।

हिदायत०—इनायतखाँ तो बचे हुए हैं न ?

सिपाही—जी हुजूर।

हुसेन—अच्छा जाओ।

[सिपाही जाता है।]

हिदायत०—सचमुच कोई खराबी हुआ चाहती है।

हुसेन—जी हाँ हुजूर, मालूम तो कुछ ऐसा ही होता है। उस रोज आप फरमाते थे कि मेवाड़ फतह करना चुटकी बजाने जैसा आसान काम है। पर अब तो आप समझ गये होंगे कि यह कैसा कठिन काम है। अब तो आपको इस बन्देकी बात ठीक मालूम होती है न ? यह लीजिए, वे और भी नजदीक आ रहे हैं।

हिदायत०—बेशक। इस लड़ाईमें क्या होगा, कुछ कहा नहीं जा सकता।

हुसेन—जी हाँ जनाब, कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

[दूसरा सिपाही आता है।]

हिदायत०—क्या खबर है ?

सिपाही—हुजूर, शाही फौजें बाईं ओरसे भाग रही हैं।

हिदायत०—यह क्यों ?

हुसेन—शायद यह शोर उन्हींका है ?

सिपाही—जी हाँ।　　　　(सिपाही जाता है।)

हुसेन—जनाब सिपहसालार साहब, आप जरा खेमेसे बाहर तो निकलिए। कमसे कम आपको देखकर सिपाहियों और अफसरोंकी हिम्मत तो बढ़ेगी! आप तो सिपहसालार हैं, जरा बाहर निकलिए।

हिदायत०—हाय मैं सिपहसालार हूँ! (बहुत ही हताशसूचक सूरत बना लेता है।)

[तीसरा सिपाही आता है।]

सिपाही—खुदावन्द, इनायतखाँ मारे गये।

हिदायत०—ऐं, यह क्या कह रहा है ? भला यह भी कभी मुमकिन है ? फिर राजपूतोंका शोर सुनाई पड़ता है। लो, ये तो बहुत ही नजदीक आ पहुँचे!

हुसेन—जनाब, आप एक बार बाहर निकलिए तो सही।

हिदायत०—अब वक्त ही कहाँ है ? यह सुनते हो ?

हुसेन—जी हाँ, सुन रहा हूँ। शोर बराबर बढ़ता ही जाता है। यह लीजिए, और भी नजदीक आ गया।　　　　[चौथा सिपाही आता है।]

सिपाही—जनाब, सब चौपट हुआ।

हिदायत०—यह तो मैं पहले जानता था। और कुछ ?

हुसेन—और अब क्या होगा ? चौपट होनेके बाद और क्या हो सकता है ?

सिपाही—हुजूर, सारी शाही फौज भाग रही है और राजपूत बढ़ते चले आ रहे हैं।

हिदायत०—हुसेन, मालूम होता है दुश्मन आ पहुँचे।

[नैपथ्यसे 'भागो भागो' सुन पड़ता है।]

हिदायत०—किस तरफ ?

हुसेन—इस तरफ।

(हुसेन एक तरफ भागता है और हिदायत घबराकर दूसरी तरफ दौड़ता है। इतनेमें उसे गोली लगती है और वह गिर पड़ता है। कई राजपूतोंके साथ मुगलोंका झण्डा हाथमें लिये हुए, अजयसिंह आते हैं।)

अजयसिंह—जय! मेवाड़के राणाकी जय!

सैनिक—जय, मेवाड़के राणाकी जय!

हिदायत०—(दोनों हाथ उठाकर) दोहाई! मुझे न मारना। मैं अभी जिन्दा हूँ। मुझे मारो मत, कैद कर लो।

अजय०—तुम कौन हो?

हिदायत०—मैं शाही फौजका सिपहसालार हूँ।

अजय०—सिपहसालार? इस वक्त लड़ाईका मैदान छोड़कर तुम खेमेमें क्यों पड़े थे?

हिदायत०—ऐं-मैं-ऐं-मैं? इसकी एक बड़ी माकूल वजह है। लेकिन इस वक्त याद नहीं आ रही है। तुम लोग मुझे मारो मत। मेरी जान बख्श दो।

अजय०—देखो, यह गीदड़ आया है मेवाड़ जीतने! डरो मत। तुम्हारी जान नहीं ली जायगी। सारे राजपूतानेमें मेवाड़-विजयकी घोषणा होने दो।

हिदायत०—हाँ, होने दो। इसमें मुझे कोई उज्र नहीं है।

(अपने सैनिकोंके साथ अजयसिंह जाते हैं।)

हिदायत०—जान बची ! ! ! प्यास! पानी! पानी!

अन्य दृश्य

स्थान—युद्धक्षेत्र। **समय**—आधी रात।

[जगह जगह मुरदों और घायलोंके ढेर लगे हुए हैं। कई सैनिकोंको साथ लिये हुए मानसी वहीं घूम रही है। किसी किसी सैनिकके हाथमें मशाल है।]

मानसी—देखो, कुछ लोग उधर जाओ। मैं इधर देखती हूँ।

[कई राजपूत सैनिक चले जाते हैं।]

मानसी—ओह, चारों ओर कितनी हत्या हुई है! यह रोना और चिल्लाना! कैसा करुण दृश्य है! हे परमेश्वर, क्या तुम्हारे राज्यमें यही नियम है कि मनुष्यको मनुष्य खाय? क्या पृथ्वीमेंसे कभी इस हिंसाका अन्त न होगा? मनुष्य बे-रोक-टोक दूसरे मनुष्योंकी हत्या करता है और दयामय, तुम चुपचाप खड़े तमाशा देखते हो! नीले आकाशको भेदकर सारे विश्वमें पापका विकट और भैरव विजय-हुंकार उठ रहा है, तब भी तुम

उसका गला नहीं दबाते ! यह कैसा भीषण करुण और मर्म्मभेदी दृश्य है ! ये मुरदोंके ढेर देखे नहीं जाते ! यह घायलोंकी चिल्लाहट, सुनी नहीं जाती !

पहला घायल—हाय रे मरे !

मानसी—बताओ भाई, तुम्हें कहाँ चोट लगी है ? आहा ! बेचारेको बड़ा कष्ट है !

प० घायल—यहाँ, यहाँ । माँ, तुम कौन हो ?

मानसी—चुप चाप पड़े रहो, बोलो मत । (गोली लगे हुए स्थानपर पट्टी बाँधती है और एक सैनिकको इशारा करती है । वह एक कटोरी लाकर देता है । मानसी उस घायलसे कहती है—) कोई डरकी बात नहीं है, लो दवा पीओ । (वह घायल दवा पी लेता है । पास ही एक दूसरा घायल चिल्ला उठता है, तब उस दूसरे घायलके पास जाकर कहती है—) चुपचाप पड़े रहो । तुम्हारी शुश्रूषाका प्रबन्ध होता है । (एक राजपूत सैनिकको संकेत करती है । वह चला जाता है, तब उस दूसरे घायलसे कहती है—) तुम चुपचाप पड़े रहो, मैं अभी आती हूँ ।

तीसरा घायल—हे राम, अब तो प्राण निकल जायँ तो अच्छा हो । बड़ा दर्द है ।

मानसी—(उस तीसरे घायलके पास जाती है और उसे देखकर कहती है—) अभी तो इसमें प्राण हैं । (एक सैनिकसे) इसे देखो ।

हिदायत०—प्यास ! प्यास ! पानी ! पानी !

मानसी—(हिदायतके पास जाती है और एक सैनिकसे पानीका गिलास लेकर उसे देती हुई कहती है—)यह लो, पानी पीओ ।

हिदायत०—(पानी पीकर) या खुदा जान बची !

[कई सैनिकोंके साथ अजयसिंह आते हैं ।]

अजय०—इस अँधेरेमें तुम कौन हो ?—मेवाड़की राजकन्या !

मानसी—कौन ? अजय ?

अजय०—(पास आकर) हाँ मानसी ।

मानसी—अजय, अपने सैनिकोंसे कहो कि वे घायलोंकी सेवा करनेमें हमारी सहायता करें । हमारे आदमी कम हैं ।

अजय०—उन्हें क्या काम करना होगा ?

मानसी—वे घायलोंको उठा-उठाकर सेवा-शिविरमें ले जाएँगे ।

अजय०—बहुत ठीक । सैनिको, इन घायलोंको उठा ले चलनेका प्रबन्ध करो।

[सैनिक खटोले लेने चले जाते हैं ।]

मानसी—कैसा आनन्द है अजय !

अजय०—कैसी ज्योति है मानसी !

मानसी—कहाँ ?

अजय०—तुम्हारे मुखपर ।—विकट आर्तनादकी इस जन्म-भूमिमें, मृत्युके इस लीला-क्षेत्रमें, इस भयानक श्मशानमें, इस तारोंभरी रातमें, यह कैसी ज्योति है ! तूफानमें लहरें मारते हुए समुद्रपर प्रभातके सूर्य्यकी तरह, घने काले मेघोंमें स्थिर नीले आकाशकी तरह, दुःखके ऊपर करुणाकी तरह —यह कैसी मूर्ति है ! यह सौन्दर्य्य, यह गरिमा, यह विस्मय, बड़ा ही अपूर्व है !—मानसी ! (हाथ पकड़ लेते हैं ।)

मानसी—अजय !

आठवाँ दृश्य

स्थान—उदयपुरका राजपथ । **समय**—प्रभात ।

[कई चारण गाते हुए आते हैं । पीछेसे अमरसिंह, गोविंदसिंह, अजयसिंह और अन्यान्य सामन्तगण आते हैं ।]

आसावरी

जागो जागो हे पुरनारी० ॥
समरहिं जीति अमर हैं आवत; रखि मरजाद तिहारी ॥
सूर्यवंशको नाश करन हित, आई सेना भारी ।
गये जवन रंजित करि केवल हमरी छुरी कटारी ॥
गर्व खर्व जवननको करिके, आवत हैं रनधारी ।
दीप्त भई मेवाड़-भूमि है, गरिमा बढ़ी हमारी ॥
है शुभ दिन मेवाड़-महीको, नाचो दै दै तारी ।
रहे खेत जो उन हित डारो, निज आँखिनसों वारी ॥

दूसरा अंक

पहला दृश्य

स्थान—आगरेमें राजा सगरसिंहका घर। **समय**—सबेरा।

[राजा सगरसिंह और उनके नाती अरुणसिंह बातें कर रहे हैं।]

सगर०—अरुण, यह कैसे आश्चर्यकी बात है कि अमरसिंहने देवारके युद्धमें मुगल-सेनाको घासकी तरह काटकर रख दिया।

अरुण०—धन्य राणा अमरसिंह!

सगर०—लड़कपनमें अमरसिंह बड़ा गहरा शौकीन और खिलाड़ी था। यह कौन कह सकता था कि वह आगे चलकर ऐसा निकलेगा!

अरुण०—नानाजी, महर्षि वाल्मीकि भी तो पहले डाकू थे।

सगर०—महर्षि वाल्मीकि कौन? तुलसीदासके लड़के?

अरुण०—वाह नानाजी, क्या आपने महर्षि वाल्मीकिका नाम नहीं सुना? वे एक बड़े भारी महर्षि थे।

सगर०—हाँ! ऐसी बात! खयाल तो नहीं आता कि कहीं उन्हें देखा हो।

अरुण०—आप देखेंगे कहाँसे? वे त्रेतायुगमें हुए थे।

सगर०—किस युगमें?

अरुण०—त्रेतायुगमें।

सगर०—हाँ? तब तो हमारे जनमके पहलेकी बात है। पर हाँ, नाम सुना है। सुनते हैं, बड़े रसिक थे।

अरुण०—अजी नहीं, उन्होंने तो रामायण लिखी है।

सगर०—रामायण लिखी है? रामायण बहुत अच्छी किताब है?

अरुण०—क्यों नानाजी, आपने रामायण नहीं पढ़ी? भगवान् रामचन्द्र हम लोगोंके पूर्व-पुरुष थे। उसमें उन्हींकी कथा लिखी गई है। आप उनके विषयमें कुछ नहीं जानते? राम राम!

सगर०—बेटा, मैं पढ़ूँ कहाँसे? लड़ते लड़ते तो मेरा जनम बीत गया। मुझे पढ़नेका समय ही कहाँ मिला?

अरुण०—क्या आप भी कभी लड़े थे ?

सगर०—अह, मैं बड़ी लड़ाइयाँ लड़ा हूँ । तब तुम्हारा जनम भी नहीं हुआ था।

अरुण०—आप किसके साथ लड़े थे ?

सगर०—यह तो याद नहीं आता; पर हाँ इतना जरूर याद है कि मैं कई बार युद्धमें गया था। उस समय तुम्हारी माँ—

अरुण०—नानाजी मेरी माँ कहाँ है ?

सगर०—यह कोई नहीं जानता कि वह कहाँ है। एक दिन सबेरे उठते ही वह 'मेवाड़ मेवाड़' चिल्ला उठी। उसी दिन सन्ध्याके समय हम लोगोंने बहुत ढूँढ़ा, पर कहीं उसका पता नहीं लगा।

अरुण०—और मेरे पिताजी ?

सगर०—वह तो सदासे पागल सरीखा था। एक बार महाराज गजसिंहके साथ गुजरातपर चढ़ाई करने गया और वहीं मारा गया।

अरुण०—मैं समझता हूँ कि मेरी माँ यहीं कहीं मेवाड़में होगी ?

सगर०—हो सकता है।

अरुण०—नानाजी, आप मेवाड़ छोड़कर यहाँ क्यों चले आये ? देखिए न, आपके भाई महाराणा प्रतापसिंहने अपने देशके लिए प्राण दे दिये।

सगर०—तभी तो बेचारे इतनी छोटी अवस्थामें ही मारे गये। मैं उन्हें मना करता था; पर उन्होंने मेरी बात नहीं मानी। भला बताओ, इसमें मेरा क्या दोष ?

अरुण०—पर आज-कल तो सुनते हैं गली गली चारण और भाट उनकी कीर्ति गाते फिरते हैं।

सगर०—ऊँह, उससे क्या होता है ! वे तो मर गये, अपनी जानसे तो गये ! अब वे स्वयं तो अपनी कीर्ति सुनने नहीं आते ! मुझे अच्छी तरह याद है कि एक बार जब हम और प्रताप दोनों लड़के थे, एक नेवलेके संग साँपकी लड़ाई हो रही थी। मैंने कह दिया कि नेवला जीतेगा। पर प्रतापने मेरी बात नहीं मानी। साँपके माथेपर लक्ष्य करके नेवला कभी इधर झपटता था और कभी उधर, और साँप फुंकार कर करके फन फटकारता था। अन्तमें हुआ यही कि नेवलेकी पकड़ साँपके सिरपर भरपूर बैठ गई और साँप उसी जगह सिर पटक पटक-कर मर गया। भाई, नेवलेका तो काम ही

है साँपको मारना; साँप कब तक उसके सामने ठहर सकता है? इसीलिए मैंने नेवलेका पक्ष लिया था; और प्रतापने लिया था साँपका पक्ष। इस वक्त भी वही बात है।

अरुण०—लेकिन नानाजी, इस देवारकी लड़ाईमें?

सगर०—भैया मेरे, वह ठहरा रक्तबीजका वंश, कहाँ तक काटोगे? और फिर अगर मुसलमानोंकी संख्या घट जाय, तो वे बहुतसे हिन्दुओंको मुसलमान बना लेंगे और फिर लड़ेंगे। हिन्दू तो उनकी तरह मुसलमानोंको हिन्दू बनायेंगे नहीं। मुसलमानोंका हिन्दू क्या करेंगे? जो लोग एक बार किसी तरह मुसलमान हो जाते हैं, उन्हें भी तो वे फिरसे किसी तरह हिन्दू नहीं बनाते। बस, इसी जगह हिन्दू भूल करते हैं।

अरुण०—कैसी भूल?

सगर०—देखो न, तुम्हारे मामा महाबतखाँ कितने सहजमें मुसलमान हो गये। जरा देखें तो कि इस तरह उनका अब्दुल्ला कैसे हिन्दू होता है। वह कभी हिन्दू नहीं हो सकता।

अरुण०—नानाजी, तब फिर आप भी मुसलमान क्यों न हो गये?

सगर०—यहीं तो तुम्हारे नानाजीकी हिम्मत नहीं पड़ी। मेरे लड़केमें बड़ा साहस था। उसने ज़रा भी पशोपेश नहीं किया। यह अवश्य है कि मैंने पहलेहीसे उसका बहुत-सा काम कर रक्खा था और उसका रास्ता साफ़ कर दिया था। अगर मैं साहस करके मुगलोंके पक्षमें न चला जाता, तो महाबतखाँको मुसलमान होनेकी हिम्मत न पड़ती।

अरुण०—नानाजी, आपको तो मुसलमान ही हो जाना चाहिए था। जिस हिन्दूने रामायण नहीं पढ़ी, उसे मुसलमान हो जाना चाहिए।

सगर०—ऊँह, रामायणमें क्या रक्खा है? सब चंडूखानेकी गप्पें हैं।

[मुगल-सेनापति सैयद अब्दुल्लाका प्रवेश]

सगर०—अब्दुल्ला साहब, आइए, आदाब।

अब्दुल्ला—आदाब अर्ज राणा साहब।

सगर०—राणा कौन है?

अब्दुल्ला—आप राणा हैं।

सगर०—भला मैं कहाँका राणा?

अब्दुल्ला—मेवाड़के।

सगर०—सो कैसे ? मेवाड़ के राणा तो अमरसिंह हैं।

अब्दुल्ला—पर शाहंशाह सलामतने अब तो आपको राणा बना दिया है।

सगर०—इसका क्या मतलब ?

अब्दुल्ला—उनका हुक्म है कि आप अभी चित्तौर चले जाएँ।

सगर०—चित्तौर क्यों ?

अब्दुल्ला—वहीं आपकी राजधानी है।

सगर०—तब अमरसिंहकी राजधानी कहाँ रहेगी ? उदयपुरमें ?

अब्दुल्ला—वे तो अब राणा ही नहीं हैं ! बादशाह सलामतने उन्हें गद्दीसे उतार दिया है।

सगर०—पर वे गद्दी कैसे छोड़ेंगे ?

अब्दुल्ला—उनसे जबर्दस्ती गद्दी छुड़ाई जायगी।

सगर०—क्या मुझे चलकर उनके साथ लड़ना पड़ेगा ? नहीं साहब, मैं राणा नहीं बनना चाहता।

अरुण०—क्यों, आप तो अभी कहते थे कि हम लड़ना-भिड़ना खूब जानते हैं और लड़ाई लड़ते लड़ते ही हमारा जनम बीत गया है। अब चलके लड़िए।

सगर०—चुप रह लड़के, तुझसे कौन पूछता है ? (अब्दुल्लासे) नहीं, जनाब सैयद साहब, मैं लड़-भिड़ न सकूँगा। इसी लड़ने-भिड़नेके डरसे तो मैंने अपने आपको चुपचाप मुगलोंके सुपुर्द कर दिया है और अगर मुझे लड़ना ही होगा, तो मैं अपने देशकी तरफसे न लड़कर उलटे उसपर चढ़ाई करने क्यों जाऊँगा ?

अब्दुल्ला—नहीं जनाब, आपको लड़ना-भिड़ना नहीं पड़ेगा। और लड़नेकी ज़रूरत ही पड़ी, तो हम लोग खुद लड़ लेंगे। आपको मेहरबानी करके सिर्फ़ राणा बनना पड़ेगा और चित्तोरमें रहना होगा।

सगर०—और अगर अमरसिंहने चितोरपर चढ़ाई कर दी तो ?

अब्दुल्ला—नहीं, वे चढ़ाई न करेंगे। जब आज तक उन्होंने चढ़ाई न की, तो अब क्यों करेंगे ?

सगर०—वाह सैयद साहब, भला यह भी कोई दलील है ? कोई आदमी पहले कभी मरा नहीं, लेकिन क्या सिर्फ़ इसीलिए वह आगे भी न मरेगा ? आपने जो उस दिन शादी की, तो क्या आपकी शादी नहीं हुई ?

अब्दुल्ला—मैं आपका मतलब नहीं समझा।

सगर०—क्योंकि उससे पहले तो आपने कभी शादी की ही नहीं थी। इसलिए क्या आपकी वह शादी शादी ही नहीं हुई? भला यह भी कोई सुबूत है! (अरुणकी ओर देखकर) लड़के, तू हँसता क्यों है? (अब्दुल्लासे) साँपने अगर पहले कभी नहीं काटा, तो क्या वह आगे भी कभी न काटेगा?

अब्दुल्ला—जनाब, आप बिगड़ते क्यों हैं?

सगर०—वाह साहब, बिगड़ें नहीं? आप बातें ही ऐसी करते हैं। माफ कीजिए, मैं राणा नहीं होना चाहता।

अब्दुल्ला—खैर साहब, आप बादशाह सलामतके हुजूरमें तो चलिए। आपको जो कुछ कहना हो, वह सब उन्हींकी खिदमतमें गुजारिश कीजिएगा।

सगर०—अच्छा चलिए जनाब, लेकिन है यह बहुत ही बुरी, कायरपन और नीचताकी बात। आप लोग मुझे अपनी मुट्ठीमें पाकर जबरदस्ती राणा बनाना चाहते हैं। देखिए, क्या होता है। लेकिन यह है बड़ी ही बे-इन्साफी और अहसान-फरामोशी। चलो अरुण।

दूसरा दृश्य

स्थान—उदयपुरके राज-प्रासादका अन्तःपुर। समय—प्रभात।

[मानसी अकेली गाती है।]

विहाग

दरसनसों पुलकित जग सारो० ॥

कोमल कर परसत ही तेरो, हुलसत हृदय हमारो ॥
शून्य लोक सब पुन्य भरत हैं, गुंजित हैं दिसि चारों।
गगन मगन ह्वै बरसत मधु है, मधुकर-मन मतवारो ॥
फूलत फूल विपिन है विकसित, नदियन नीर निहारो।
सुधासार शतधा ह्वै टपकत, रवि ससिको उजियारो ॥
अरुन बरन हैं कमल-चरन पुनि, केशदाम है कारो।
लागो रहत देहमें मारुत, नित मलयागिरि वारो ॥
कर सोहत फूलनकी माला, अधर माधुरी डारो।
नव वसन्तको भवन भव्य है, सुन्दर सुखद सँवारो ॥

[अजयसिंह आते हैं।]

मानसी—कौन ? अजय ?

अजय०—हाँ मानसी !

मानसी—तुम इतने दिनों तक क्यों नहीं आये ? क्या तुम्हारा जी अच्छा नहीं था ?

अजय०—नहीं तो।

मानसी—मैंने पिताजीसे तुम्हारे विषय में पूछा था। क्या उन्होंने तुमसे कुछ कहा नहीं।

अजय०—नहीं मानसी, तुम यहाँ अकेली क्यों हो ?

मानसी—मैं गाती थी और सोचती थी।

अजय०—क्या सोचती थीं ?

मानसी—यही सोचती थी कि मनुष्य बड़ा ही दीन है। मेवाड़के युद्धमें मुझे यही एक सबसे बड़ी शिक्षा मिली कि मनुष्य बड़ा ही दुर्बल है। तलवारके एक ही वारसे वह जमीनपर गिर पड़ता है। जरा-सा ज्वर आते ही वह बालकोंकी तरह असहाय हो जाता है। हाय! जिसके रक्त में ही मृत्युका बीज मिला हुआ है, वह एक दूसरेसे प्रेम न करके परस्पर घृणा क्यों करता है ? अजय, तुम टक लगाये मेरा मुँह क्यों देख रहे हो ?

अजय०—तुम्हारे मुँहपर मैं आज भी वही स्निग्ध ज्योति देख रहा हूँ, जो मैंने उस दिन देखी थी।

मानसी—किस दिन ?

अजय०—उस रातको—देवारके युद्ध-क्षेत्रमें। उस दिन वहाँ अँधेरेमें तुम मूर्तिमती दया ही जान पड़ती थीं। उसी दिन मेरा उन्मुख प्रेम असीम निराशाकी लम्बी साँसमें मिल गया।

मानसी—अजय, निराशा कैसी ?

अजय०—बतलाऊँ कैसी निराशा ? मैंने सोचा कि तुम्हें पकड़नेका प्रयत्न करना व्यर्थ है। मैंने समझ लिया कि तुम इस संसारकी स्त्री नहीं, बल्कि स्वर्गकी देवी हो। तुम्हारी आत्माकी तीव्र ज्योतिको संसार सहन नहीं कर सकेगा, इस ख्यालसे ईश्वरने तुम्हारे इस सुन्दर शरीरको उसके ढँके रखनेके लिए आवरणस्वरूप बनाया है। आकाश रंग-मंच होता, प्रत्येक नक्षत्र एक एक पवित्र चरित्र होता, चाँदनी एक निर्मल संगीत होती और उस महा नाटककी नायिका होतीं—तुम। मैं तुम्हारे साथ प्रेम करनेके योग्य नहीं हूँ।

हाँ, मैं तुम्हारे प्रति भक्ति कर सकता हूँ। उस भक्तिके बदलेमें थोड़ी-सी—बहुत ही थोड़ी-सी तुम्हारी करुणा चाहता हूँ। क्या तुम मेरी इच्छा पूरी करोगी?

[अजयसिंह इतना कहकर मानसीका हाथ पकड़ लेते हैं। इतनेमें रानी वहाँ आ पहुँचती है।]

रानी—अजयसिंह!

[मानसीका हाथ छोड़कर अजयसिंह पीछे हट जाते हैं।]

मानसी—क्या है माँ?

रानी—अजय, तुम्हें इस प्रकार एकान्तमें हमारी कन्याके साथ बातचीत न करनी चाहिए।

अजय०—मैं क्षमा माँगता हूँ।

मानसी—अजय, क्षमा किस बातकी?

रानी—याद रक्खो तुम राज-कन्या हो। जाओ, अन्दर जाओ।

[मानसी चली जाती है।]

रानी—अजय, तुम गोविंदसिंहजीके लड़के हो। तुम्हें हम लोग घरके आदमियोंके तरह समझते हैं। लेकिन तुम्हें अब इस बातका ध्यान रखना चाहिए कि न तो मानसी ही अब निरी लड़की है और न तुम निरे लड़के हो। अब इस बातका ध्यान रखकर मानसीसे मिला करो। हमारी समझमें तो अब इसके साथ तुम्हारा मिलना-जुलना ही ठीक नहीं है।

अजय०—जो आज्ञा।

(अजयसिंह अभिवादन करके चले जाते हैं।)

रानी—खूब अच्छी तरह समझ लिया है। यदि अजयके साथ मेरी मानसीका ब्याह हो जाता, तो बहुत अच्छा होता। लेकिन यह कभी हो सकता है? नहीं। हो ही नहीं सकता। (कुछ दृढ़ होकर) और जो बात हो नहीं सकती, उसकी चिन्ता ही क्यों की जाय?

(राणा अमरसिंह आते हैं।)

राणा—रानी!

रानी—महाराज, मैं आपके पास आना ही चाहती थी।

राणा—तुमने मानसीको कुछ कहा-सुना है?

रानी—नहीं तो। क्यों? क्या हुआ?

राणा—वह रो रही है।

रानी—(चकित होकर) रो रही है ?

राणा—जाओ, देखो, क्यों रोती है।

रानी—पगली कहींकी ! मैंने रोनेकी कौन-सी बात कही थी ? आप तो अपनी लड़कीका हाल कुछ देखते नहीं, और वह स्वयं कुछ समझती नहीं। वह अभी थोड़ी देर पहले अजयसिंहके साथ—

राणा—खबरदार ! मानसीके सम्बन्धमें ज़रा सोच-समझके बात करो। जानती हो, वह कौन है ?

रानी—कौन है ?

राणा—हम नहीं जानते कि वह कौन है हम तो अभी तक उसे पहचान ही नहीं सके। कोई नहीं कह सकता, वह कौन है और कहाँसे आई है।

रानी—लो, इस तरह भी मेरी खराबी और उस तरह भी मेरी खराबी। जाऊँ, देखूँ, लड़की रोती क्यों है। बहुत तंग करती है। (जाना चाहती है।)

राणा—और देखो—

[रानी लौट आती है।]

राणा—देखो, आगेसे कभी मानसीको कुछ न कहना। स्वर्गकी एक किरण दया करके इस लोकमें उतर आई है। अगर तुम कुछ कहोगी, तो वह रूठ करके चली जायगी। (रानी निराशा प्रकट करती हुई जाती है। राणा एक ऊँचे आसनपर बैठते हैं और आकाशकी ओर देखते हुए कहते हैं—) यह जीवन भी एक स्वप्न है। यह आकाश कैसा नीला, स्वच्छ और गहरा है। इसके नीचे अलस, उदार और मन्थर मेघ उड़ रहे हैं। प्रकृतिके जीवनमें समुद्रकी तरह लहरें उठती हैं और बैठ जाती हैं। यह अलस सौन्दर्य्य कभी कभी बहुत ही भीम आकार धारण कर लेता है। आकाशमें बादल गरजते हैं, पृथ्वीपर जल बरसकर बह जाता है और इसके बाद पहलेकी तरह सब शान्त और स्थिर हो जाते हैं।

[गोविन्दसिंह आते हैं।]

राणा—कौन गोविन्दसिंहजी ? कहिए, इस समय अचानक कैसे आये ?

गोविन्द०—महाराज, मेवाड़पर फिरसे आक्रमण करनेके लिए मुगलोंकी नई सेना आई है।

राणा—आ गई ? यह तो हम पहलेसे ही जानते थे कि केवल देवारके

युद्धसे इस युद्धकी समाप्ति नहीं होगी। मुगल सारा राजपूताना जब तक उजाड़ न देंगे, तब तक न मानेंगे।

गोविन्द०—महाराज, क्या कारण है कि अभी तक हम लोगोंकी ओरसे कुछ तैयारी नहीं हुई ?

राणा—क्यों ? तैयारीकी आवश्यकता ही क्या है ?

गोविन्द०—क्या अब महाराज युद्ध न करेंगे ?

राणा—क्यों ? युद्ध करनेसे क्या होगा ?

गोविन्द०—महाराज, तब तो मुगल आकर मेवाड़पर तुरंत ही अधिकार कर लेंगे।

राणा—जब उनका इतना आग्रह है, तब फिर इसमें हर्ज ही क्या है ?

गोविन्द०—क्या सचमुच महाराज युद्ध न करेंगे ?

राणा—नहीं। एक बार हुआ, हो गया।

गोविन्द०—किसी प्रकारका उद्यम, प्रयत्न या प्रतिवाद किये बिना ही—

राणा—लेकिन इन सब बातोंकी आवश्यकता ही क्या है ? हमारी समझमें तो यह सब व्यर्थ होगा। देवारके युद्धमें हमारे प्रायः आधेसे अधिक सैनिक नष्ट हो चुके हैं। अब मुगलोंके साथ लड़नेके लिए हमारे पास सेना ही कहाँ है ?

[सत्यवती आती है।]

सत्य०—महाराज, ज़मीन फोड़कर सेना निकल आयगी। सेनाकी आप चिन्ता न करें।

राणा—कौन, चारणी ?

सत्य०—हाँ महाराज, मैं चारणी हूँ। मैंने सुना है कि मुगल फिर मेवाड़पर आक्रमण करने आये हैं। पर मैं देखती हूँ कि मेवाड़ अभी तक निश्चिन्त और उदासीन है। मैंने समझा कि कदाचित् अभी तक महाराजकी निद्रा-भंग नहीं हुई। इसीसे मैं महाराजकी निद्रा भंग करनेके लिए आई हूँ।

राणा—चारणी, अब हमारी युद्ध करनेकी इच्छा नहीं है। अबकी बार हम सन्धि करेंगे।

सत्य०—यह क्यों महाराज ? देवारके युद्धकी विजयके उपरान्त सन्धि क्यों ? क्या महाराज, उस गौरवके शिखरपरसे फिसलकर अपमानके गहरे गढ़ेमें गिर जायँगे ?

राणा—चारणी, देवारकी विजयकी बात छोड़ दो। देवारमें हमारी जीत अवश्य हुई है; पर जानती हो, वह जीत किस प्रकार हुई है? उसमें हमारे लगभग आधे सैनिक मारे गये हैं। इतने वीरोंका रक्त बहाकर हमने वह विजय प्राप्त की है।

सत्य०—महाराज, यह कोई चिन्ता या दुःखकी बात नहीं है। वीरोंका रक्त ही जातिको उर्वर करता है। जिस देशमें वीर मरते हैं, उस देशके लिए दुःख नहीं करना चाहिए; किन्तु दुखी उन देशोंके लिये होना चाहिए, जहाँ वीर नहीं मरते।

राणा—लेकिन हम तो देखते हैं कि यदि एक बार हमने और भी युद्ध किया, तो भी उसका कोई फल नहीं होगा। इस समरका कभी अन्त न होगा। इन मुट्ठीभर सैनिकोंको लेकर विश्वविजयी दिल्ली सम्राटकी सेनाके विरुद्ध खड़े होना पूरा पूरा पागलपन है।

सत्य०—महाराज, यदि इसको पागलपन कहते हैं, तो भी इसका स्थान सारी विवेचनाओं और सारे विचारोंसे बहुत ऊँचा है। सारा विश्व इसी पागलपनके पैरोंपर आकर लोटता है। स्वर्गसे एक गरिमा आकर इस पागलपनके माथेपर मुकुट पहनाती है। जिसे महाराज पागलपन कहते हैं, क्या उस पागलपनके बिना आज तक किसीने कोई बड़ा काम किया है?

राणा०—लेकिन इस युद्धका अन्तिम परिणाम निश्चित मृत्यु—

सत्य०—महाराज, राणा प्रतापसिंहके पुत्रके लिए यह समझना कठिन नहीं होगा कि अधीनता श्रेष्ठ है या मृत्यु। क्या मरनेके भयसे हम अपना रत्न डाकुओंके हाथमें सौंप दें? रत्नसे भी कहीं बढ़कर अपने इस सर्वस्व, पूर्व पुरुषोंके संचित और अनेक शताब्दियोंके स्मारकको क्या केवल प्राणभयसे बिना युद्ध किये ही सौंप दें? अगर वह लेना ही चाहता हो तो मर-कटकर आयगी? महाराज, उठिए, मुगल हमारे बिल्कुल पास आ पहुँचे हैं, अब स्वप्न देखनेका समय नहीं है।

राणा—चारणी, तुम कौन हो? तुम्हारे वाक्योंमें गर्जन, तुम्हारे नेत्रोंमें बिजली और तुम्हारी अंग-भंगीमें आँधी है! सूर्य्यके समान प्रकाशमान, जलप्रतापके समान प्रबल, वज्रके समान भीषण, तुम कौन हो? तुम केवल चारणी तो नहीं हो!

सत्य०—महाराज, यदि आप पूछते ही हैं, तो बतलाये देती हूँ। अब अपने आपको छिपानेकी आवश्यकता भी नहीं है। मैं राणा प्रतापसिंहके भाई सगरसिंहकी कन्या सत्यवती हूँ।

राणा—हैं! तुम राजा सगरसिंहकी कन्या हो?

सत्य०—महाराज, यह परिचय देते हुए मेरा सिर लज्जासे झुक जाता है। तो भी पिताके पापोंका प्रायश्चित्त इस कन्यासे जहाँ तक हो सकता है, वह करती है। मेरे पिता अपने भतीजेको सिंहासनसे उतरनेके लिए चित्तौरके दुर्गमें कल्पित राणा बनकर बैठे हुए हैं और मैं उन्हींकी कन्या होकर उन्हींके विरुद्ध मेवाड़वासियोंको उत्तेजित करती फिरती हूँ। मैं लोगोंको यह बतलाती फिरती हूँ कि सगरसिंह मेवाड़के कोई नहीं हैं, वे केवल मुगलोंके खरीदे हुए दास हैं। महाराज, यह तो आप जानते ही होंगे कि आज तक मेवाड़के किसी प्राणीने पिताको कर नहीं दिया?

राणा—हाँ बहन, मालूम है।

सत्य०—महाराज, मेवाड़के लिए मैं अपना सुख, संभोग, पिता और पुत्र आदि सब कुछ छोड़कर जंगलों और तराइयोंमें चारणी बनकर उसकी महिमा गाती फिरती हूँ। क्या आप मेरे उसी प्रिय मेवाड़को बिल्कुल तुच्छ और अनावश्यक पदार्थकी तरह नष्ट हो जाने देंगे? (सत्यवतीकी आँखोंमें जल भर आता है, उसका गला रुँध जाता है, वह अपनी आँखें पोंछती है।)

राणा—शान्त होओ बहन, तुम हमारी बहन और राजकन्या हो। तुम जिस देशके लिए अपना जीवन उत्सर्ग कर सकती हो, उसके लिए उस देशका राजा तुम्हारा भाई भी अपने प्राण दे सकता है। गोविंदसिंहजी, युद्धके लिए प्रस्तुत हो जाइए और सेना तैयार कीजिए।

तीसरा दृश्य

स्थान—मेवाड़में सैयद अब्दुल्लाका डेरा। **समय**—रात।

[अब्दुल्ला, हुसेन और हिदायतखाँ बातें कर रहे हैं।]

अब्दुल्ला—इस मुल्कमें पहाड़ बहुत ज्यादा हैं।

हिदायत०—जी-हाँ जनाब।

अब्दुल्ला—आपने जिस बार शिकस्त खाई थी, उस बार राजपूतोंने किस तरफसे चढ़ाई की थी?

हिदायत०—मैंने तो कभी शिकस्त नहीं खाई ?

अब्दुल्ला—आपने शिकस्त नहीं खाई ? दुश्मन आपको कैद कर ले गये और आप कहते हैं कि मैंने शिकस्त नहीं खाई। और शिकस्त खाना किसे कहते हैं ?

हिदायत०—वे मुझे कैद क्या करेंगे; मैंने खुद अपने आपको चालाकीसे पकड़वा दिया था।

अब्दुल्ला—चालाकीसे अपने आपको पकड़ा देनेके क्या मानी ?

हुसेन—हाँ जनाब, इन्हींने अपने आपको चालाकीहीसे पकड़वा दिया था। जिस वक्त राजपूतोंकी फौज सिरपर आ पहुँची, उस वक्त हमारे सिपाहियोंने खूब सोच-समझकर म्यानसे तलवार बाहर निकाली। इसके बाद उन्होंने अपने अपने बिस्तरपर एक तरफ म्यान और दूसरी तरफ तलवार रख ली। इसके बाद सब लोग बड़े आरामसे अपनी अपनी मूछोंपर ताव देने लगे। उस वक्त खाना भी तैयार था। बिना खाना खाये कहीं जा न सकते थे। खाना खाया और कंघीसे बाल साफ़ करके फिर एक बार मूछोंपर ताव दे लिया। उस वक्त मालूम हुआ कि राजपूतोंकी फौज हमारे लश्करके दरवाजेपर ही आ पहुँची है। आखिर हमारे सिपाही लड़नेके लिए निकले। लेकिन पहलेसे ही तलवारें और म्यानें दोनों अलग अलग रक्खी हुई थीं ! जल्दीमें घबड़ाकर तलवार लेना तो गये भूल, सबने अपने हाथोंमें म्यानें ले लीं !

अब्दुल्ला—क्या यह ग़लती सभीसे हुई ?

हिदायत०—जी-हाँ जनाब, यह खुदाकी क़ुदरत है, इसमें किसीका दखल नहीं।

अब्दुल्ला—उन लोगोंको एक काम और करना चाहिए था।

हिदायत०—वह क्या ?

अब्दुल्ला—खाना खानेके बाद मुनासिब तो यह था कि वे लोग एक तरफ़ तलवार और दूसरी तरफ़ म्यान रखकर एक नींद सो और लेते।

हिदायत०—लेकिन दिक़्क़त तो इस बातकी थी कि दुश्मन सिरपर आ पहुँचे थे।

अब्दुल्ला—यह ठीक है—सोनेके लिए काफ़ी वक्त ही नहीं था। खैर, तब आप लोगोंने क्या किया ?

हिदायत०—तब हम लोग करते ही क्या !

अब्दुल्ला—शायद यह कह दिया होगा कि—कैद कर लो, मगर मारो मत।

हिदायत०—नहीं यह तो नहीं कहा था; मगर हाँ, इससे कुछ मिलता-जुलता ही कहा था। क्या कहा था, कुछ ठीक याद नहीं।

अब्दुल्ला—खैर, कुछ भी हो; पर इसमें शक नहीं कि आपने ऐसी कोई खूबसूरत बात नहीं कही होगी जिसके भूल जानेसे उर्दू-साहित्यको कुछ नुकसान पहुँचा हो। गरज यह कि इसके बाद आपने अपने आपको गिरिफ्तार करा दिया?

हिदायत०—जी-हाँ जनाब, आपने बहुत ही ठीक समझा। लेकिन मेरे गिरिफ्तार होनेसे पहले ही एक बूढ़े राजपूतने गलतीसे किसी दूसरेके धोखेमें मुझपर गोली चला दी थी।

अब्दुल्ला—मैंने सुना, इसके बाद ही राणाकी लड़की आपकी खिदमतके लिए आई थी।

हिदायत०—जी-हाँ। आखिर तो वह एक बहादुर सिपाहीकी लड़की थी। वह बहादुरों और सिपाहियोंकी कदर खूब जानती थी और तिसपर मेरा यह चेहरा जनाब! (हुसेनकी तरफ़ कनखियोंसे देखता हुआ इशारा करता है।)

हुसेन—बेशक, आपका चेहरा तो काबिल तारीफ़के है!

अब्दुल्ला—इसीलिए शायद वह...

हिदायत—अब मैं आपसे क्या अर्ज करूँ जनाब!

अब्दुल्ला—शायद वह बहुत ही हसीन थी!

हिदायत०—ओफ़! कुछ न पूछिए।

अब्दुल्ला—उसने आपसे क्या कहा?

हिदायत०—अजी हज़रत, मुझसे कुछ कहनेकी तो उसकी हिम्मत ही नहीं पड़ी। मालूम होता है, वह मुझे 'जान-मन' कहना चाहती थी। एक बार उसके मुँहसे 'जा' तो बहुत ही साफ़ निकल आया था; और शायद 'न' का भी कुछ हिस्सा निकला ही चाहता था। मैं 'शायद' इसलिए कहता हूँ कि झूठ बात बोलनेकी मेरी आदत बिल्कुल नहीं। लेकिन मैंने कुछ इस अन्दाज़से उसकी तरफ़ देखा कि वह भी समझ गई कि इनपर मेरा जादू नहीं चल सकता। बस, वह कहते कहते ही रह गई...आगे कुछ कहनेकी उसकी हिम्मत ही न पड़ी।

अब्दुल्ला—तब उसके बाद क्या हुआ?

हुसेन—उसके बाद राणाने मारे खौफ़के सिपहसालार साहबको छोड़ दिया।

हिदायत०—नहीं तो मैं भी फिर उन्हें एक बार दिखला देता—हाँ ! ! !

अब्दुल्ला—बेशक ! हिदायतअली साहब, आपकी बहादुरीमें तो शक नहीं।

हिदायत०—नहीं जनाब, मैं कोई ऐसा बहुत बड़ा बहादुर तो नहीं हूँ। मगर फिर भी आप जानते हैं, यह सिपहगीरीका फन मैंने बहुत दौलत खर्च करके सीखा है !

अब्दुल्ला—(बातका रुख बदलकर) ओफ़ ! रातके वक्त ये पहाड़ कैसे काले मालूम पड़ते हैं। मालूम होता है, इस मुल्कमें सब जगह पहाड़ ही पहाड़ हैं।

हिदायत०—सिर्फ़ पहाड़ ही नहीं बल्कि दो चार दरिया भी हैं जनाब !

अब्दुल्ला—कल सुबह अच्छी तरह देखा जायगा।

[कुछ दूरपर तोपका शब्द सुन पड़ता है।]

अब्दुल्ला—(घबराकर) यह क्या ?

हिदायत०—हुसेन—

हुसेन—जनाब, मालूम होता है कि इस बार राजपूतोंने हमारा इन्तजार न करके खुद ही हम लोगोंपर हमला कर दिया है।

अब्दुल्ला—हुसेन, फ़ौजसे तैयार होनेके लिए कहो।

चौथा दृश्य

स्थान—चित्तौरके दुर्गका भीतरी भाग। **समय**—रात।

[एक पलंगपर अरुणसिंह सोया है, दूसरा पलग खाली पड़ा है। राजा सगरसिंह इधर-उधर टहल रहे हैं।]

सगर०—यह तो मानो इन लोगोंने चित्तौरके दुर्गमें मुझे एक प्रकारसे कैद ही कर रक्खा है। यह एक एक पुराना पत्थर और यह मान्धाताके समयका एक एक पुराना पेड़, मानों एक एक भूत मालूम होता है। रातको जब हवा चलती है, तब वह और भी भयावना हो जाता है और जब अन्धड़ चलता है, तब तो उसके भूत होनेमें कोई सन्देह ही नहीं रह जाता। जब अँधेरा हो जाता है, तब तो वह बिल्कुल अलकतरेकी तरह काला मालूम होने लगता है। तारे तो कहीं दिखाई ही नहीं पड़ते। जो हो, यहाँ

आनेसे इतना उपकार तो अवश्य हुआ कि एक बार रामायणका पाठ हो गया। बड़ी अच्छी पुस्तक है। एक लाभ यह भी हुआ कि चारणों और चारणियोंसे अपने पूर्व-पुरुषोंकी बहुत-सी कथाएँ सुन लीं। वे थे तो बड़े वीर, उनकी वीरतामें किसी प्रकारका सन्देह नहीं किया जा सकता। लेकिन आज मुझे न जाने क्यों कुछ भय लगता है। यह निर्जन दुर्ग ठहरा, तिसपर अन्धड़ चलता है। डर तो और क्या हो? पहरेदार! पहरेदार!

[पहरेदार आता है।]

सगर०—देखो, खूब होशियार रहना। कोई आने न पावे। बाबा रे! यह क्या है?

पहरे०—कहाँ महाराज?

सगर०—यही यही सामने! बापरे!

पहरे०—कुछ नहीं, अन्धड़ है।

सगर०—मालूम होता है, तुम्हारे देशमें अन्धड़ खूब चलता है।

पहरे०—जी हाँ महाराज।

सगर०—अब तो महाराज बिना नींदके बे-मौत मरे। क्यों जी, तुम्हारे देशमें अँधेरा भी बहुत होता है?

पहरे०—जी हाँ महाराज!

सगर०—इतने अँधेरेके बिना हर्ज़ ही क्या था! तुम जागते रहना और बाहर जरा रोशनी कर लो, जिसमें अँधेरा कुछ कम हो जाय। इतने अँधेरेमें मुझे नींद नहीं आती। और तुम हाथमें नंगी तलवार लेकर चारों तरफ घूमते रहो। ज्योंही कोई आवे, त्योंही उसपर एक हाथ! पर देखो, कहीं भूलसे मेरी गर्दनपर ही हाथ साफ मत कर देना! जाओ।

(पहरेदार जाता है।)

सगर०—देखो, अरुण पड़ा सोता है। इसकी नींद भी कैसी है! अगर यह एकाध बार करवट बदले, कुछ हूँ हाँ करे, तो भी मैं समझूँ कि यह जागता है। पर मुझे तो आज नींद नहीं आती। हमारे पुरखा इसी दुर्गमें रहते थे; इसीसे मालूम होता है कि वे बड़े साहसी थे। पहरेदार!

(पहरेदार आता है।)

सगर०—जागते हो न? देखो, सोना मत! और बीच बीचमें कुछ आवाज भी लगाते रहना, जिससे मालूम हो कि हाँ, तुम जागते हो। जाओ।

(पहरेदार जाता है।)

सगर०—अरुण ! अरुण !

अरुण०—हाँ, नानाजी !

सगर०—अच्छा, अच्छा, सोओ। आज खूब खबरदारीसे सोना, मुझे डर लगता है।

अरुण०—डर काहेका ? आप सोइए न ! (करवट बदलता है।)

सगर०—अरे हाँ, तुम्हें क्या है। कहके छुट्टी पा गये कि आप सोइए न ! अरे, इधर यह क्या ? पहरेदार ? पहरेदार ? अरे सो गया ? ओ पहरेदार ! अरुण ! अरुण !

अरुण०—क्या है नानाजी ? मालूम होता है, आज सोने नहीं देंगे ?

सगर०—सुनते हो, यह कौन बोल रहा है ?

अरुण०—कोई नहीं, अन्धड़ चल रहा है। (करवट बदलता है।)

सगर०—अरे कहाँका अन्धड़ ? अन्धड़ भी कभी बोलता है ? वह तो बोलता है ! बाप रे !

अरुण०—क्या है नानाजी ?

सगर०—भूत !

अरुण०—कहाँ है भूत ?

सगर०—वह देखो। (ऊँगलीसे इशारा करते हैं।)

अरुण०—कहाँ ? मुझे तो कहीं कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता। मालूम होता है, आप जाग्रते जागते स्वप्न देखते हैं।

सगर०—(कुछ दूरीपर लक्ष्य रखकर) मैं तो आना ही नहीं चाहता था। उन्होंने मुझे जबरदस्ती भेज दिया। ना भाई, मैं राणा नहीं बनता, राणा अमरसिंह ही हैं। मेरी जान मत मारो। मुझे छोड़ दो।

अरुण०—नानाजी !

सगर०—अरे ये कौन हैं ? चित्तौरके राणा भीमसिंह ! जयमल ! प्रताप ! नहीं भाई, मैं कल ही यहाँसे चला जाऊँगा। इस तरहसे मेरी तरफ मत घूरो। यह कौन है ? मारो मत मारो मत।

(सगरसिंह चिल्लाकर गिर पड़ते हैं। अरुणसिंह उन्हें उठाकर पकड़ता है। पहरेदार भी आ जाता है।)

अरुण०—पहरेदार, पानी लाओ। नानाजी बे-होश हो गये हैं।

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—उदयपुरके राजप्रासादका अन्तःपुर। **समय**—दोपहर।

(मानसी और कल्याणी बातें कर रही हैं।)

मानसी—कल्याणी, मैंने यहाँपर एक कुष्ठाश्रम स्थापित किया है उसमें बहुतसे कोढ़ी आकर रहने लगे हैं और बहुतसे आ रहे हैं। हाय बेचारे कैसे दुःखी हैं!

कल्याणी—आपका जीवन धन्य है।

मानसी—कल्याणी, तुम मेरी प्रशंसा करो, मेरे कामोंका अनुमोदन करो, मुझे उत्साह दिलाओ और मेरे हृदयको बलवान् बनाओ।

कल्याणी—आपके इस काममें किसीने बाधा नहीं दी?

मानसी—पिताजी तो कुछ नहीं कहते, पर हाँ, और सब लोग कहते हैं कि राजकुमारीको ये सब बातें शोभा नहीं देतीं। मानों राजकुमारीको सुखी ही न होना चाहिए!

कल्याणी—क्या इसमें कोई बहुत बड़ा सुख मिलता है?

मानसी—कल्याणी, अवश्य ही बहुत बड़ा सुख मिलता है। दूसरोंको सुखी करना वास्तविक सुख है। अपने आपको सुखी करनेकी चेष्टा प्रायः व्यर्थ ही हुआ करती है। हिंस्र जन्तुओंकी तरह वह चेष्टा अपनी सन्तानको आप ही खा जाती है।

कल्याणी—भइया भी यही कहते थे। वे तो आपके शिष्य हैं न! वे प्रायः ही आपका नाम लिया करते हैं?

मानसी—क्या सचमुच ही मेरा नाम लिया करते हैं?

कल्याणी—बल्कि यों कहना चाहिए कि वे आपकी पूजा किया करते हैं। उन्होंने ही मुझसे कहा है कि—" तुम बीच बीचमें मेरी आत्माके हरिद्वार तक जाकर तीर्थस्नान कर आया करो!"

मानसी—पर वे स्वयं क्यों नहीं आते? तुम उनसे यहाँ आनेके लिए कहना। उन्हें—देखनेके लिए मेरा बहुत जी चाहता है।

[एक दासी आती है।]

दासी—राजकुमारी, एक तसवीरवाली आई है?

मानसी—क्या वह तसवीरें बेचती है?

दासी—जी-हाँ।

मानसी—अच्छा, उसे यहाँ ले आओ।

(दासी जाती है।)

मानसी—तुम्हारे भइया क्या किया करते हैं?

कल्याणी—घरमें तो मैं उन्हें बहुत ही कम देखती हूँ। जब वे घर आते हैं, तब पूछनेपर कहा करते हैं—" अमुक रोगीकी सेवा करने गया था, अमुक दुखियाको धैर्य्य देने गया था।" बस ऐसे ही ऐसे काम बतलाया करते हैं।

[तसवीरवाली आती है।]

मानसी—तुम तसवीर बेचती हो?

तसवीर०—जी हाँ।

मानसी—जरा देखें, तुम्हारे पास कैसी तसवीरें हैं।

(तसवीरवाली तसवीर दिखानेके लिए गठरी खोलती है। इस बीचमें मानसी उससे पूछती है)—तुम्हारा मकान कहाँ है?

तसवीर०—आगरे।

मानसी—क्या इतनी दूर तुम तसवीरें बेचनेके लिए ही आई हो?

तसवीर०—जी-हाँ, हम लोग इस कामके लिए सभी शहरोंमें घूमा करती हैं।

मानसी—यह तसवीर किसकी है?

तसवीर०—अकबर बादशाहकी।

कल्याणी—अकबर बादशाहकी? लाओ, देखें तो सही। (हाथमें लेकर) ओहो, कैसी तीव्र दृष्टि है!

मानसी—लेकिन उसमें कुछ स्नेह और दयाका भी अंश है। यह किसकी तसवीर है?

तसवीर०—महाराजा मानसिंहकी।

कल्याणी—इनके चेहरेसे तो कुछ विषाद और कुछ निराशा झलकती है।

मानसी—हाँ, कुछ चिन्तित जान पड़ते हैं। पर देखती हो, उसके साथ कुछ आत्म मर्य्यादा भी मिली हुई है। और यह किसकी है?

तसवीर०—बादशाह जहाँगीरकी।

कल्याणी—मुँहसे कैसा दम्भ प्रकट होता है!

मानसी—साथमें कुछ दृढ़-प्रतिज्ञता भी है। और यह किसकी तसवीर है?

तसवीर०—मुगल-सेनापति खानखाना हिदायतअली की। देखिए, कैसा सुन्दर चेहरा है ?

(मानसी थोड़ी देरतक उसके चेहरेकी तरफ देखकर हँस पड़ती है।)

कल्याणी—आप हँसी क्यों ?

मानसी—देखो न कैसा मूर्ख जान पड़ता है ! चेहरेका रंग-ढंग और भाव तो देखो ! क्या टेढ़े तिरछे सँवारे हुए बाल हैं ! और बीचमें माँग ! औरतोंका-सा स्वाँग बनाये हुए ! कैसा जंगली, मूर्ख, अहंकारी जान पड़ता है ! और यह कौन है ?

तसवीर०—महाबतखाँ।

मानसी—सेनापति महाबतखाँ ? देखूँ। (थोड़ी देरतक देखकर) प्रकृत वीरका मुँह है। कैसा ऊँचा ललाट है, कैसी तीव्र दृष्टि है ! इतना तेज, इतनी दृढ़ता, इतनी उदारता और इतना आत्माभिमान, ये सब गुण प्रायः एक ही मनुष्यमें नहीं मिल सकते। क्यों कल्याणी, इतने ध्यानसे क्या देख रही हो ?

कल्याणी—(सिर नीचा करके) कुछ नहीं।

मानसी—और ये तसवीरें किसकी हैं ?

तसवीर०—बादशाहके उमराओंकी।

मानसी—अच्छा, मैं ये अकबर, जहाँगीर, मानसिंह और महाबतखाँकी तसवीरें लेती हूँ। इन सबका क्या दाम हुआ ?

तसवीर०—जो आप दे दें।

मानसी—(चार मोहरें देकर) ये लो।

तसवीर०—इन मोहरोंपर राणा अमरसिंहकी मूर्ति है न ?

मानसी—हाँ।

तसवीर०—यहाँ आपकी कोई तसवीर नहीं दिखाई पड़ती।

मानसी—नहीं, मेरी कोई तसवीर नहीं है।

तसवीर०—यदि आप आज्ञा दें, तो मैं एक तसवीर बना सकती हूँ।

मानसी—मेरी तसवीर ? क्यों ?

तसवीर०—ऐसा करुणापूर्ण मुख मैंने आज तक कभी नहीं देखा। मैं बहुत अच्छा चित्र तो नहीं बना सकती, पर तो भी आपका चित्र बना सकूँगी।

मानसी—नहीं, कोई आवश्यकता नहीं है।

तसवीर०—क्यों ? इसमें हर्ज ही क्या है ?

मानसी—नहीं, इसमें हर्ज़ है। अच्छा, अब तुम जाओ।

तसवीर०—बहुत अच्छा, अब मैं जाती हूँ।

मानसी—हाँ, जाओ।

(तसवीरवाली चली जाती है।)

मानसी—कल्याणी, इतने ध्यानसे किसका चेहरा देख रही हो ?

कल्याणी—किसीका नहीं।

(तसवीरोंको उलट-पुलटकर मानसीके हाथमें दे देती है।)

मानसी—इससे क्या होता है ! मैं वह तसवीर निकाल दूँगी। (चुनकर एक तसवीर कल्याणीको देती हुई) यही है न ? इसे लो। कल्याणी, तुम इतनी लज्जा क्यों करती हो ? ये तो तुम्हारे पति हैं।

कल्याणी—(नीचा मुँह किये हुए) पर विधर्म्मी हैं।

मानसी—तुम ऐसी बात कहती हो ! धर्म्म ? जिस प्रकार सब मनुष्य एक ही ईश्वरकी संतान हैं, उसी प्रकार सब धर्म्म एक ही धर्म्मकी संतान हैं। फिर भी न जाने क्यों उन सबमें इतना भ्रातृविरोध है। संसारमें धर्म्मके नामपर जितना रक्तपात हुआ है, उतना कदाचित् और किसी बातके लिए नहीं हुआ।

कल्याणी—क्या उनपर प्रेम रखनेमें पाप है ?

मानसी—प्रेम करनेमें पाप ! जो जितना ही कुत्सित हो, उसके साथ प्रेम करनेमें उतना ही पुण्य होता है। जो जितना ही घृणित हो, वह उतना ही अधिक अनुकम्पाका पात्र है। सारे विश्वमें उसी एक अनादि सौन्दर्य्यकी किरण चमकती है। कोई ऐसा हृदय नहीं है, जिसपर उस ज्योतिकी एक भी रेखा न पड़ी हो। तिसपर भी महाबतखाँ विधर्म्मी नहीं हैं, वे केवल मुसलमान हैं। यदि ईश्वरको ‘ ब्रह्म ’ न कहकर ‘ अल्लाह ’ कहते हैं, तो क्या इसी भाषाके भेदसे वे पापी हो गये ?

कल्याणी—आजसे आप मेरी गुरानी हुईं।

मानसी—प्रेमके राज्यमें सुन्दर और कुरूपका, अच्छे और बुरेका विचार नहीं होता। उसमें जाति-भेद नहीं है। प्रेमका राज्य पार्थिव नहीं है। उसका निवास-स्थान प्रभातके उज्ज्वल आकाशमें है। प्रेम किसी प्रकारके बंधन या रुकावटको नहीं मानता। वह एक स्वच्छ और स्वयं-विकसित सौन्दर्य्य है। मृत्युके ऊपर एक विजयी आत्माकी तरह, और ब्रह्माण्डके विवर्तनपर

महाकालकी तरह वह संगीत अमर है। कल्याणी, क्या देख रही हो? (कल्याणी जो अब तक चुपचाप आश्चर्यसे मानसीका मुँह निहार रही थी, अचानक मानसीका प्रश्न सुनकर मानों स्वप्नसे जाग उठती है।)

कल्याणी—राजकुमारी, आपका हृदय भी एक संगीत—(कुछ रुककर) कृपाकर आज मुझे आज्ञा दीजिए। यदि अनुमति हो, तो मैं कल फिर आऊँगी।

मानसी—अच्छा जाओ कल्याणी। लेकिन कल जरूर आना और अजयसे भी आनेके लिए कहना।

(कल्याणी चली जाती है। उसके चले जानेपर मानसी गाती है—)

विहाग

अद्भुत प्रेमको ब्योहार।
प्रेम किये नर परवस होवे, परपै निज अधिकार ॥ अ० ॥
प्रेम लिये नहीं बिगरत कछु है, दिये नाहिं संहार।
प्रेमहिसों रवि-ससी ऊगत हैं, फूलत फूल हजार ॥ अ० ॥
पौन चलत, प्रेमहिको गावत पंछी जय-जयकार।
नभसों सागर मिलत और, नभ सागर मिलत अपार ॥ अ० ॥
प्रेमहिसों पाथर हू पिघलत, बहत नदीकी धार।
सुरग लोक पृथिवीपै उतरत, पृथी चढ़त सुरद्वार ॥ अ० ॥
प्रेम-गीत गूँजत नभ, छाई प्रेम किरन संसार।
प्रेमी बनहु बेग अब प्यारे, प्रेम जगतको सार ॥ अ० ॥

[रानी आती है।]

रानी—मानसी!

मानसी—क्यों माँ?

रानी—तुम्हारे पिताजी तुम्हें बुलाते हैं।

मानसी—क्यों? क्या काम है?

रानी—तुम्हारे ब्याहके लिए दिन ठीक करना है, इसीसे तुमसे कुछ पूछना चाहते हैं। मेरी बात तो उन्होंने मानी ही नहीं।

मानसी—मेरा ब्याह!

रानी—हाँ, जोधपुरके राजकुमार यशवंतसिंहके साथ तुम्हारे ब्याहकी

बातचीत पक्की हुई है। ब्याहका दिन ठीक करनेके लिए जोधपुर-महाराजके पास आदमी भेजा जा रहा है।

[मानसी रो पड़ती है।]

रानी—क्यों ? यह क्या ? रोती क्यों हो ?

मानसी—नहीं, रोती नहीं हूँ। मैं ब्याह नहीं करूँगी।

रानी—ब्याह नहीं करोगी ? यह क्यों ?

मानसी—मैं परिणयके बन्धनमें अपने जीवनको बाँधकर नहीं रक्खूँगी। मेरे प्रेमकी परिधि उससे कहीं बड़ी है।

रानी—ऐसा कहीं होता है बेटी ? कुमारी रहकर क्या कहीं जीवन बिताया जा सकता है ?

मानसी—क्यों नहीं बिताया जा सकता ? बालविधवायें ब्रह्मचर्य पालन कर सकती हैं, और बालिका कुमारी ब्रह्मचर्य पालन नहीं कर सकती ? मैं ब्रह्मचारिणी रहूँगी। मैं पिताजीसे जाकर कहे आती हूँ।

(मानसी चली जाती है।)

रानी—यह क्या ? लड़की कहीं पागल तो नहीं हो गई ? पागल न हो तो क्या हो ! वे तो कुछ कहते ही नहीं हैं। मुझे पहले ही डर था—लो, वे स्वयं ही आ रहे हैं। आज मैं उन्हें अच्छी तरह दो-चार बातें सुनाऊँगी।

[राणा आते हैं।]

राणा—मानसी कहाँ है ?

रानी—वह आपके पास नहीं गई ? जान पड़ता है, वह कुछ पागल हो गई है।

राणा—पागल हो गई है !

रानी—और क्या। कहती है, मैं ब्याह नहीं करूँगी—ब्रह्मचारिणी बनूँगी।

राणा—ठीक है; समझ लिया।

रानी—मैं कहती थी कि लड़कीपर कुछ डाँट-डपट रखिए, पर आपने नहीं सुना। उसीका यह सब फल है।

राणा—जान पड़ता है, तुम कुछ भी समझती-बूझती नहीं।

रानी—मैं खूब समझती हूँ। वह पागल हो गई है।

राणा—यदि ऐसा पागलपन तुम्हें होता, तो मैं तुम्हें सोनेके सिंहासनपर बैठाकर पूजता।

रानी—लो और सुनो ! बाप-बेटी दोनोंकी एक दशा !

राणा—रानी, हम भी उसे बहुत अच्छी तरह पहचानते हों सो नहीं है; तो भी इतना समझते हैं कि वह कोई स्वर्गीय पदार्थ है ।

रानी—वह यदि—

राणा—नहीं, उसके विषयमें तुम कुछ भी मत कहो। रहती रहो, चुपचाप देखती ही रहो।

(राणा जाते हैं।)

रानी—देख लिया। मानसीका यह पागलपन पैतृक है ! अब मेरा भविष्य बहुत अच्छा नहीं जान पड़ता।

(रानी जाती है।)

छट्ठा दृश्य

स्थान—गोविन्दसिंहका घर । **समय**—दोपहर ।

[दीवारपर एक तसवीर टँगी है । थोड़ी दूरपर हाथमें फूलोंका गुच्छा लिये हुए कल्याणी उस तसवीरकी ओर देख रही है ।]

कल्याणी—प्यारे ! मेरे प्रियतम ! मेरे यौवन-निकुंजके पिक ! मेरी सुषुप्तिके सुख-जागरण ! मेरी जाग्रतिके सोनेके स्वप्न ! तुमने मेरे जगत्‌को नये रंगमें रँग डाला है, मेरे सामान्य जीवनको रहस्यमय बना दिया है। तुम प्रभातके सूर्य्य हो—तुमने मेरे हृदयकी अँधेरी कन्दरामें प्रवेश किया है। तुम मेरे हृदयके राजा हो—तुमने मेरे हृदयके सिंहासनपर अधिकार किया है। तुम आशा हो—तुमने जीवनकी निराशाको सिर उठाकर देखना सिखाया है। तुम सदा मधुर, सदा नवीन हो। तुम मेरे स्वामी हो, मेरे देवता हो, मेरे सारे जीवनकी तपस्या हो। (अपने हाथके फूल उस चित्रपर चढ़ाती है।)

[इतनेहीमें गोविन्दसिंह वहाँ पहुँचकर उसका वह पूजन देखते हैं ।]

गोविन्द०— (गम्भीर स्वरसे) कल्याणी !

कल्याणी—(फिरकर) पिताजी !

गोविन्द०—यह चित्र किसका है ?

कल्याणी—(सिर झुकाकर) मेरे पतिका।

गोविन्द०—तुम्हारा पति कौन ? महाबतखाँ ?

कल्याणी—हाँ।

गोविन्द०—यह चित्र यहाँ कैसे आया?

कल्याणी—पूजा करनेके लिए मैंने इसे आज ही यहाँ लाकर टाँगा है।

गोविन्द०—पूजा करनेके लिए?

कल्याणी—हाँ पिताजी, पूजा करनेके लिए। आप क्रोध न कीजिए। क्या यह कोई अपराधकी बात है? (गोविन्दसिंहके पैरोंपर पड़ जाती है।)

गोविन्द०—महाबतखाँ तुम्हारा कौन है?

कल्याणी—(उठकर) वे मेरे पति हैं।

गोविन्द०—लेकिन मैं तो तुमसे कई बार कह चुका हूँ कि तुम्हारे कोई पति नहीं है।

कल्याणी—पहले तो मैं भी यही समझती थी, पर अब मुझे मालूम हुआ कि—नहीं, मेरे पति हैं।

गोविन्द०—पति है? विधर्मी महाबतखाँ तुम्हारा पति है?

कल्याणी—पिताजी, मैं न तो धर्म्म जानती हूँ और न आचार जानती हूँ। मैं केवल इतना जानती हूँ कि इन्हींके साथ मेरा विवाह हुआ था। उसी विवाह-बन्धनसे, ईश्वरको साक्षी देकर, हम दोनों उस दिन एक हुए थे। भला, उस बन्धनको कौन तोड़ सकता है?

गोविन्द०—क्या महाबतखाँने मुसलमान होकर वह बन्धन स्वयं नहीं तोड़ डाला?

कल्याणी—नहीं, क्योंकि मुसलमान होनेपर भी उन्होंने मुझे ग्रहण करना चाहा था।

गोविन्द०—तुम्हें ग्रहण करना चाहा था? यवन होनेके उपरान्त गोविन्द-सिंहकी कन्याको ग्रहण करना या न करना महाबतखाँकी इच्छा या अनिच्छा पर निर्भर है? कल्याणी, जिस दिन महाबतखाँ हिन्दू धर्म्म छोड़कर मुसलमान हुआ था, उसी दिन उसने तुम्हारा परित्याग कर दिया था।

कल्याणी—नहीं, उन्होंने मेरा परित्याग नहीं किया था।

गोविन्द०—क्या कहती हो? उसने तुम्हारा परित्याग नहीं किया? क्या अभी तक तुम्हारे अपमानकी मात्रा पूरी नहीं हुई? अच्छा तो सुनो, क्या तुमने महाबतखाँको कोई पत्र लिखा था?

कल्याणी—हाँ, लिखा था।

[अजयसिंह आते हैं।]

गोविन्द०— हा अदृष्ट! (माथा ठोकर) महाबतखाँने वह पत्र लौटा दिया है और उसपर लिख दिया है—" कल्याणी, मैं तुम्हें ग्रहण नहीं कर सकता।" क्या तुमसे इतना अपमान कराये बिना नहीं रहा जाता था? लो, यह वह पत्र है।

[गोविन्दसिंह हाथसे पत्र फेंक देते हैं। कल्याणी उस पत्रको उठाकर बड़ी उत्सुकतासे देखने लगती है।]

गोविन्द०—क्यों अजय, वह खबर ठीक है न?]

अजय०— हाँ, पिताजी, बिल्कुल ठीक है। मुगल फिर मेवाड़पर आक्रमण करने आये हैं।

गोविन्द०—इस बार सेनापति कौन है?

अजय०—शाहजादा परवेज।

गोविन्द०—सेना कितनी है?

अजय०—लगभग एक लाख।

गोविन्द०—अबकी बार सब नष्ट हो जायगा, कुछ भी न बचेगा। मेवाड़में जो कुछ थोड़े-बहुत प्राण बचे थे, वे भी निकल जायँगे। क्यों कल्याणी, तुम सिर क्यों नीचा किये हो?

कल्याणी—क्या कहूँ पिताजी!

गोविन्द०—क्या अब भी महाबतखाँ तुम्हारा पति है?

कल्याणी—हाँ, अवश्य। जो पति अपनी स्त्रीका आदर करता है, उसकी तो सभी स्त्रियाँ पूजा करती हैं। वास्तविक साध्वी वही है, जो अपने पतिके उन्हीं पैरोंकी पूजा करती है, जिनसे वह उसे मारता है। जिसकी पति-भक्तिका वियोग होनेपर क्षय नहीं होता, अवज्ञा या अपमान होनेपर संकोच नहीं होता, पतिके निष्ठुरता दिखानेपर ह्रास नहीं होता, निराश होनेपर भी जिसमें क्षोभ नहीं होता; जिसकी पति-भक्ति अन्धकारमें चन्द्रमाके सामान शान्त, आँधीमें पर्वतके सामान दृढ़ और घूमनेमें ध्रुव तारेके समान स्थिर हो; जिसकी पति-भक्ति सब अवसरोंपर, सब अवस्थाओंमें विश्वासके समान स्वच्छ, करुणाके समान अयाचित और मातृ-स्नेहके समान निरपेक्ष हो, वही सच्ची साध्वी है। वे मेरे स्वामी हैं, पति हैं देवता हैं, चाहे वे मुझे अपनी चरण-सेवामें रक्खें, चाहे न रक्खें, मेरे लिए दोनों बातें बराबर हैं।

गोविन्द०—दोनों बराबर हैं ? कल्याणी, तुम मेरी कन्या हो न ?

कल्याणी—हाँ पिताजी, मैं आपकी कन्या हूँ। मैं आपका गौरव कभी नष्ट नहीं करूँगी। पिताजी, आज मैं एक बड़ी भारी गरिमाका अनुभव कर रही हूँ। आज मुझे यह दिखानेका बड़ा भारी सुयोग मिला है कि मैं उनकी साध्वी स्त्री हूँ। आपने जिस प्रकार अपने देशके लिए अपना जीवन उत्सर्ग किया है, उसी प्रकार आज मैं भी उस महा आनन्दमय उत्सर्गके पथपर चल रही हूँ। अब मुझे कौन रोक सकता है। (आवेशके कारण कल्याणीका स्वर काँपने लगता है।)

गोविन्द०—उत्सर्ग ? तुम अपनी इस कुलटा-प्रवृत्तिको उत्सर्ग कहती हो ?

अजय०—पिताजी, आप जो कुछ कहें वह सोच-समझकर कहें। आप नहीं जानते कि आप क्रोधमें आकर क्या कह रहे हैं। और नहीं तो मैं नहीं समझता कि जो भाव अति उच्च, अति सुन्दर और अति पवित्र हैं, उसे आप इतना कुत्सित क्यों समझ रहे हैं।

कल्याणी—(गर्वसे) भइया, तुम मेरे सच्चे भाई हो।

गोविंद०—अजय, मैं एक-सौ बार कह चुका हूँ कि कल्याणीके पति नहीं है, वह विधवा हो चुकी है।

कल्याणी—और मैं भी एक-सौ बार यह कहनेके लिए तैयार हूँ कि जीवनमें, मरणमें, सदा वे ही मेरे पति हैं।

गोविंद०—महाबतखाँ, और तुम्हारा पति ? ऐसा घृणित, नीच, अधमाधम—

कल्याणी—पिताजी, ध्यान रखिए, आपके लिए घृणित होनेपर भी वे मेरे लिए पूज्य हैं।

गोविंद०—पूज्य ? वह जाति-द्रोही विधर्म्मी महाबतखाँ गोविंदसिंहकी कन्याका पूज्य है ? हा दुर्भाग्य !

कल्याणी—(स्थिर स्वरसे) पिताजी, मैं पिताको नहीं जानती, जातिको नहीं जानती, धर्मको नहीं जानती। मेरा धर्म पति है। शास्त्रकारोंने इससे बढ़कर स्त्रीके लिए और कोई धर्म नहीं लिखा। पिताजी, स्त्री जब एक बार कूद पड़ती है तब फिर वहाँ चाहे अमृतका समुद्र हो और चाहे विषका, वहीं उसका जीवन होता है और वहीं उसका मरण होता है, वहीं उसका इह-काल है और वहीं उसका पर-काल है। वे चाहे हिन्दू हों और चाहे

मुसलमान, चाहे आस्तिक हों चाहे नास्तिक, अब तो वे और मैं दोनों, एक ही पथके पथिक हैं। इसके लिए यदि मुझे उनके साथ नरकमें भी जाना पड़े तो वहाँ जानेके लिए तैयार हूँ।

गोविन्द०—अच्छी बात है, तब तुम जा सकती हो। जहाँ तुम्हारी इच्छा हो, तो वहाँ जाओ। आजसे मैं तुम्हारा परित्याग करता हूँ।

अजय०—यह क्या! पिताजी, आप क्या कर रहे हैं! कल्याणी, आपकी कन्या—

गोविन्द०—नहीं, वह मेरी कन्या नहीं है। जाओ कल्याणी, तुम अपने पतिके पास जाओ।

कल्याणी—पिताजी, आपकी आज्ञा सिर-आँखोंपर है। अच्छा, तो अब मुझे जानेकी आज्ञा दीजिए।

[कल्याणी गोविन्दसिंहको प्रणाम करती है।]

अजय०—पिताजी, कुछ सोच-समझ लीजिए। इस प्रकार अन्याय न कीजिए। कल्याणी स्त्री है। यदि वह भूल करे, अपराध करे, तो भी उसे क्षमा करना चाहिए।

गोविन्द०—बेटा, कल्याणी नरकमें जाना चाहती है, जाय, मैं उसे रोकना नहीं चाहता।

अजय०—पिताजी, उसके लिए वह नरक नहीं है। जहाँ प्रेमका पुण्य प्रकाश है, वहीं सच्चा स्वर्ग है। जल्दीमें इस रत्नको खो न दीजिए। आप नहीं समझते कि आप क्या कर रहे हैं।

गोविन्द०—अजय, मैं बहुत अच्छी तरह समझता हूँ। कल्याणी, जो भीतरसे देशका शत्रु हो, मेरे घरमें उसके लिए स्थान नहीं है। यदि तुम्हारा धर्म्म 'पति' है, तो मेरा धर्म्म 'देश' है। जाओ।

(गोविन्दसिंह पीठ फेर लेते हैं।)

कल्याणी—जो आज्ञा पिताजी!

(कल्याणी जानेके लिए तैयार होती है।)

अजय०—ठहरो कल्याणी, पिताजी, तब आप मुझे भी जानेकी आज्ञा दीजिए।

गोविन्द०—(सामने मुँह करके) यह क्यों अजय?

अजय०—मैं इस अबला बालिकाको अकेले नहीं जाने दूँगा। मैं भी इसके साथ जाऊँगा।

गोविन्द०—लेकिन अजय, तुम्हें तो मैंने घरसे बाहर जानेके लिए नहीं कहा।

अजय०—पिताजी, मैंने भी उसकी अपेक्षा नहीं रक्खी। कल्याणी स्त्री है। आप उसे उसके पुण्यके कारण घरसे निकाल देते हैं और हिंस्र मनुष्योंसे भरे हुए संसारमें अकेली छोड़ देते हैं। यदि उसका पति यहाँ होता, तो वह उसकी रक्षा करता। इस समय पति यहाँ नहीं है, उसका भाई है। वही उसकी रक्षा करेगा। आओ कल्याणी, आज हम भाई-बहन दोनों अपनी नाव इस विक्षुब्ध संसार-सागरमें छोड़ते हैं। देखो, किनारे लगते हैं या नहीं। पिताजी, प्रणाम।

(अजयसिंह प्रणाम करते हैं।)

(अजसिंह अपने साथ कल्याणीको लेकर वहाँसे चले जाते हैं। गोविन्दसिंह पत्थरकी तरह जहाँके तहाँ खड़े रह जाते हैं।)

सातवाँ दृश्य

स्थान—चित्तौरके पासका एक जंगल। समय—संध्या।

[सगरसिंह और अरुणसिंह एक वृक्षके नीचे खड़े हुए हैं। दूर एक पहाड़के दूसरी ओर सूर्य्य अस्त हो रहा है।]

सगर०—इस राज्यमें रहनेकी मेरी तो जरा भी इच्छा नहीं है। चित्तौरका किला एक तरहका जेलखाना है; पुराना डरावना और अँधेरा, और तिसपर चारों तरफ पहाड़ और पेड़; आदमीका तो कहीं नाम भी नहीं है। इतने बड़े और पुराने पेड़ भी मैंने कहीं नहीं देखे। अरुण, मैं तो अब आगरे लौट जाऊँगा।

अरुण०—नानाजी, मुझे तो यह जगह बहुत अच्छी लगती है। यहाँके प्रत्येक पहाड़के साथ हमारे पूर्व-पुरुषोंकी स्मृति सम्बद्ध है। क्या प्राचीन कालके गौरवकी कथा आपको अच्छी नहीं लगती?

सगर०—लो, फिर वही प्राचीन गौरवका रोना ले आया! अरे, जो बीत गया सो बीत गया; उसके लिए माथा-पच्ची न किया कर।

अरुण०—लेकिन नानाजी मुझे तो वर्तमानकी अपेक्षा आतीत ही बहुत अच्छा मालूम होता है। वर्तमान बहुत ही तीव्र और स्पष्ट होता है; पर

अतीत प्रायः ढँका हुआ और अस्पष्ट होता है। अतीत मानों नीलिमाके समान, उपन्यासके समान, स्वप्नके समान होता है।

सगर०—लो, मैं जिस बातसे डरता था वही हुई। तुम ज्यों ज्यों बड़े होते जाते हो, त्यों त्यों अपनी माँके ही ढँग सीखते जाते हो। वह भी ऐसी ही बातें किया करती थी। बस, इसी तरहकी बातें करते करते ही वह घरसे निकल गई और फिर किसीको पता भी न लगा कि कहाँ चली गई।

अरुण०—मेरी माँ इस तरहकी बातें किया करती थीं?

सगर०—हाँ। और ये ही सब बातें उसके लिए काल हुईं। वह 'मेवाड़' 'मेवाड़' कहती हुई ही पागल हो गई और घरसे निकल गई।

अरुण०—मैं उसे ढूँढ़कर लाऊँगा।

सगर०—इस जंगलमेंसे? अरे बेटा, इस जंगलमें अगर सूरज डूबा होता तो उसका भी ढूँढ़ निकालना महा कठिन होता; तुम्हारी माँ तो माँ ही है।

अरुण०—नहीं नानाजी, अब मैं आगरे नहीं जाऊँगा। आपको जाना हो तो आप जाइए। मुझे यह जगह बहुत अच्छी लगती है और फिर जब मेरी माँ इस देशमें है, तब तो यही मेरा घर है। आगरेमें तो मैं इतने दिन मानों निर्वासित था।

सगर०—मुझे पहले ही इस बातका डर था। मालूम होता है, तुमने आगरेमें बादशाहका सफेद पत्थरवाला महल नहीं देखा है। चलो अबकी तुम्हें वह दिखलावेंगे।

अरुण०—नहीं, मैं कुछ नहीं देखना चाहता। मुझे तो यह निर्जन वन ही उससे कहीं अच्छा जान पड़ता है।

सगर०—आगरेमें अठत्तर मसजिदें हैं। सब एकसे एक बढ़िया, नई और झकाझक!

अरुण०—नानाजी, मुझे तो सैकड़ों ऊँची ऊँची सोनेकी मसजिदोंसे बढ़कर अपने देशका एक टूटा हुआ मन्दिर ही बहुत अच्छा मालूम होता है। मुगलोंके पैरोंके पास बैठकर राज-भोग खानेकी अपेक्षा अपनी दीना माताकी गोदमें बैठकर साग-सत्तू खाना कहीं अच्छा है। नानाजी, क्या आप यही भीख माँगकर खानेके लिए अपना देश छोड़कर, अपने भाई छोड़कर और सैकड़ों पुण्य-कथाओंवाला अपना घर छोड़कर दूसरोंके दरवाजे गये थे? वे यदि नित्य मुट्ठी भर सोना भी आपको भीखमें दें, तो भी उसके साथ उनके

पैरोंकी धूल मिली रहेगी। वे जब आपकी ओर देखकर हँसते हैं, तब मैं देखता हूँ, उस हँसीके नीचे घृणा भी झलकती रहती है। नानाजी, मैं तो पराये दिए हुए सोनेके भाण्डारसे अपने भाईके खाली हँसनेको भी कहीं अधिक उत्तम समझता हूँ।

[सत्यवती आती है।]

सत्य०—जीते रहो बेटा!

सगर०—कौन? सत्यवती? क्या मैं स्वप्न देखता हूँ? नहीं, यह तो सत्यवती ही है। सत्यवती, तुम यहाँ कैसे आ गई बेटी?

सत्य०—बेटा, जिस दिन मैं स्वदेशके लिए संन्यास लेकर घरसे निकलने लगी थी, उस दिन तुम्हारे छोटे छोटे दोनों हाथोंका बन्धन छुड़ाकर जाना ही मेरे लिए सबसे अधिक कठिन हुआ था। जब मैं इन पहाड़ोंके किनारे किनारे मेवाड़की महिमा गाती फिरती थी, तब तुम्हारी हँसीको भूलना ही मुझे सबसे अधिक कठिन जान पड़ता था। जब मैंने सुना कि तुम यहाँ आये हो तब मुझसे न रहा गया। मैं तुरन्त ही दौड़ी हुई तुम्हें देखनेके लिए यहाँ चली आई। इतनी देर तक मैं ओटसे तुम्हारी अमृतभरी बातें सुनती थी। मैं सोचती थी कि क्या ऐसी स्वर्गीय बातें भी इस पृथ्वीपर हो सकती हैं? अन्तमें मुझसे नहीं रहा गया!—मेरे सर्वस्व!

(सत्यवती हाथ बढ़ा देती है।)

सगर०—बेटी सत्यवती, मेरी ओर तो तूने एक बार देखा भी नहीं। मैंने क्या कोई अपराध किया है?

सत्य०—अपराध? क्या आप अपना अपराध नहीं जानते? नहीं, कदाचित् उसके समझनेकी शक्ति ही आपमें नहीं है। आप अपनी इस दीना, हीना और दुखिया जननी जन्म-भूमिको छोड़कर मुगलोंके प्रसाद-भोगी बने हैं। आप उन्हीं मुगलोंके दास हुए हैं, जिन्होंने यहाँकी स्त्री-जातिको लांछित किया है और जिन्होंने यहाँके पुरुषोंको मनुष्यत्व-हीन बना दिया है। जो मुगल दर्पसे फूलकर गर्वोन्मत्त होकर राजपूतानेके बाकी बचे हुए स्वाधीन राज्य मेवाड़पर बार बार आक्रमण कर रहे हैं, जो उसकी हरियाली-परसे उसीकी सन्तानके रक्तकी नदियाँ बहा रहे हैं, आप उन्हीं मुगलोंकी शरणमें पड़े हैं। आप उन्हीं मुगलोंकी कृपासे अपने भतीजे, राणा प्रताप-सिंहके पुत्रको सिंहासनसे उतारनेके लिए तैयार हुए हैं और तिसपर भी आप

पूछते हैं कि मेरा क्या अपराध है ? जाइए पिताजी, आपने अपने लिए अलग रास्ता पसन्द किया है और हम लोगोंका रास्ता अलग है। आओ बेटा, इस अन्धकार, इस दुर्दिनमें तुम्हीं मेरे सह-यात्री हो। आज मेरे हृदयमें दूना बल आ गया है। आओ बेटा, चलें।—

(अरुणको साथ लेकर जाना चाहती है।)

सगर०—नहीं नहीं, सत्यवती, ठहरो। अरुण, तुम भी मत जाओ। बल्कि नहीं, मैं भी तुम्हीं लोगोंके साथ चलूँगा। आज मेरी आँखें खुली हैं। आज मैंने अपनी मातृ-भूमिको पहचाना है। आज मैंने अपने देशके साथ दरिद्रता, दुःख और उपवास ग्रहण किया। आओ बेटी, तुम्हें अपने गलेसे लगा लूँ।

सत्य०—यह क्या पिताजी ? क्या आज मेरा इतना बड़ा भाग्य होगा कि मैं एक समयमें, एक ही साथ, अपने पिता और पुत्रको प्राप्त करूँगी ? क्या आप जो कुछ कह रहे हैं, वह सत्य है ? बिल्कुल सत्य है ?

सगर०—हाँ सत्यवती, यह सत्य है, बिल्कुल सत्य है। पहले ये सब बातें मेरी समझमें नहीं आती थीं। तुम मुझे क्षमा करो। क्षमा करो।

सत्य०—पिताजी ! पिताजी !

(सत्यवती घुटने टेककर अपने पिताके सामने बैठ जाती है
और उनके पैरोंपर अपना सिर रख देती है।)

तीसरा अंक

पहला दृश्य

स्थान—उदयपुरकी राजसभा। **समय**—प्रभात।

(सामन्त लोग खड़े हुए बातें कर रहे हैं।)

जयसिंह—यह कामनेरका युद्ध इतिहासके पृष्ठोंमें सोनेसे लिख रखनेके योग्य है।

गोकुलसिंह—परवेजकी रसद आनेका मार्ग बंद कर देना बड़ी बुद्धिमत्ताका काम हुआ।

भूपति—मालूम होता है, वे लोग यह जंगली रास्ता नहीं जानते थे।

गोकुल०—लेकिन भागनेका रास्ता खूब जानते थे।

जय०—आज मेवाड़का गौरवमय प्रभात है। देखो, कैसे नवीन प्रकारसे मेवाड़के सारे पहाड़ चमक रहे हैं।

भूपति—यह सुन्दर पवन सारे भारतमें इस विजय-समाचारको फैला दे।

[राणा अमरसिंह आते हैं।]

सब लोग—जय ! राणा अमरसिंहकी जय !

[राणा सिंहासनपर बैठते हैं।]

[राजकवि किशोरदास आते हैं और राणाका विजय गीत गाते हैं।]

आसावरी

वीर, तुम्हारी जय हो जय हो।
धराधीश तव शौर्य अपरिमित,
जिससे होता त्रिभुवन कंपित
तव महिमा गाते जगके जन,
करते मेघमृदंग सुगर्जन
आरति करता नभ, रवि शशिसे,
यह प्रताप दुर्जय अक्षय हो। *

---

* यह गीत साहित्याचार्य पं० श्रीनिधि द्विवेदीका रचा हुआ है।

राणा—किशोरदास, तुम अपने गीतमें एक चरण और जोड़ दो।

किशोर०—जो आज्ञा महाराज !

राणा—" सूर्यवंशीकी कीर्ति तुम्हारे कारण होगी नष्ट-भ्रष्ट क्षय।"

किशोर०—यह क्यों महाराज ?

राणा—(कुछ हँसकर) क्यों ? पूछते क्यों हो ?—देख लो।

[सत्यवती आती है।]

सत्य०—मेवाड़के राणाकी जय हो।

राणा—कौन ? बहन सत्यवती ?

[राणा सिंहासनसे उतरकर उसकी अभ्यर्थना करते हैं।]

राणा—आओ बहन !

सत्य०—महाराज, मैं इतनी देरतक बाहर खड़ी खड़ी मेवाड़का विजयगीत सुनती थी। सुनते सुनते आँखोंमें आनन्दाश्रु भर आये। मैं मन्त्र-मुग्धकी तरह चुपचाप खड़ी सुनने लगी। लंका जीतनेके उपरान्त महाराणाके पूर्व-पुरुष भगवान् रामचंद्रके अयोध्या प्रवेशकी बात मुझे याद आ गई। इसके बाद गीत बंद हो गया। मालूम हुआ कि मानों कोई देवी आकर अपनी आभामें आवृत करके उसे अपने स्वर्ग-राज्यमें उड़ा ले गई। उस समय मैं मानों स्वप्नसे जाग उठी।

राणा—सत्यवती, गीत इसी प्रकार थम जाता है। सभी गीत एक प्रकारके आनंद-कोलाहलके समान आरंभ होते हैं और अंतमें एक गहरी साँसमें मिल जाते हैं।

सत्य०—यह क्यों महाराज, इस आनंदके दिन आप इतने निरानंद और विरस क्यों हैं ? महाराज, आप अपने हृदयसे इस निराशाको निकालकर दूर कर दीजिए। आज मेवाड़का बहुत ही गौरवमय दिन है।

राणा—गौरवका दिन तो कहा ही जाता है। सत्यवती, एक नई बात सुनोगी ? कामनेरका युद्ध हमने नहीं जीता है।

सत्य०—तब और किसने जीता है ? क्या मुगलोंने जीता ?

राणा—नहीं, राजपूतोंने जीता है। लेकिन हम लोगोंने—जो लोग यहाँ विजयोत्सव मना रहे हैं,—यह युद्ध नहीं जीता है। जिन लोगोंने इस युद्धमें विजय प्राप्त की है, वे सब युद्ध-क्षेत्रमें पड़े हैं। सत्यवती, वास्तवमें वे लोग युद्धमें विजय नहीं प्राप्त करते, जो युद्धक्षेत्रसे निशान उड़ाते हुए, डंका

बजाते हुए और जयध्वनि करते हुए लौटते हैं, वास्तवमें विजय वे ही प्राप्त करते हैं, जो युद्धमें मारे जाते हैं।

सत्य०—महाराज, यह बिलकुल सच है। ईश्वर करे, उन लोगोंकी कीर्ति अक्षय हो। महाराज, मैं एक शुभ-संवाद सुनाना चाहती हूँ।

राणा—सत्यवती, वह कौन-सा है?

सत्य०—महाराज, मेरे पिता राणा सगरसिंहने आपके लिये चित्तौर-दुर्ग छोड़ दिया है। आप बे-रोक-टोक जाकर उस दुर्गपर अधिकार कर लें।

राणा—चित्तौर-दुर्ग हमारे लिए छोड़ दिया है? सत्यवती, यह तुम क्या कह रही हो? क्या यह बात ठीक है? ऐसा कहीं हो सकता है?

सत्य०—हाँ महाराज, यह बात बहुत ही ठीक है।

राणा—उन्होंने अचानक हमारे लिए वह दुर्ग क्यों छोड़ दिया? क्या बादशाहने उन्हें ऐसा करनेकी आज्ञा दी थी?

सत्य०—नहीं महाराज, उन्होंने बादशाहकी आज्ञासे ऐसा नहीं किया। बादशाहने उन्हें चित्तौरका किला दे दिया था। उन्हें इस बातका अधिकार था कि वे जिसे चाहें उसे यह किला दे दें। अतः वे प्रसन्नतापूर्वक वह किला आपको देकर आगरे चले गये हैं।

राणा—सामन्तो, जयध्वनि करो। स्वर्गीय पिताजीके जीवनका स्वप्न आज सफल हुआ,—उनके पुत्रके बाहुबलसे नहीं बल्कि उनके भाईके दानसे। चलो, दुर्गपर अधिकार करो, नई सेना सुसज्जित करो। आगे बढ़ो, आक्रमण करो और अन्तपर्यन्त युद्ध करो।

सत्य०—जय! राणा अमरसिंहकी जय!

दूसरा दृश्य

स्थान—गाँवके बाहर एक पगडंडीके पास छोटी-सी टूटी-फूटी कुटी।

समय—सन्ध्या।

[कल्याणीके साथ अजयसिंह उसी पगडंडीसे चले आ रहे हैं।]

कल्याणी—भइया, अब तो नहीं चला जाता।

अजय०—आज हम लोग इसी गाँवमें ठहरेंगे। गाँवके बाहर ही यह कुटी है। जान पड़ता है, कोई दूकान है। दरवाजा नहीं है, भीतर अन्धकार है।

कल्याणी—जरा आवाज दे देखो।

अजय०—कोई है? भीतर कोई है? यहाँ तो कोई बोलता ही नहीं। मालूम होता है, यहाँ कोई रहता नहीं है।

कल्याणी—आज हम लोग यहीं रहें। अब तो चला नहीं जाता।

अजय०—अच्छी बात है, तुम यहीं थोड़ी देर तक ठहरो। मैं जाकर गाँवसे दीआ ले आता हूँ।

कल्याणी—जाओ, मैं तो अब एक पग भी नहीं चल सकती। भइया, मुझे बड़ी भूख लगी है।

अजय०—मैं कुछ खानेके लिए भी ले आऊँगा। तुम यहीं ठहर जाओ।

कल्याणी—जल्दी आना भइया, मैं अकेली हूँ, डर लगता है।

अजय०—मैं बहुत जल्दी आऊँगा। यहाँ डर लगता है? यहाँ कोई है भी तो नहीं। (जाता है।)

कल्याणी—आज तक मैं कभी पैदल चली नहीं, इसीसे चलते चलते दोनों पैर लहू-लहान हो गये हैं। पर इसीमें बड़ा आनन्द मिलता है। अपनी इच्छासे इस दुःख और दरिद्रताको स्वीकार करनेमें ही मुझे असीम अभिमान हो रहा है। नदी जिस प्रकार बिना किसी तरहकी रुकावटके लहरें मारती हुई समुद्रकी ओर बढ़ती जाती है, उसी प्रकार मैं भी आनन्दपूर्वक अपने सर्वस्व—अपने स्वामी—के पास जा रही हूँ। पर मुझे यह भी नहीं मालूम कि वे दासीरूपसे भी मुझे अपने चरणोंमें स्थान देंगे या नहीं। कौन?

[फकीरके भेसमें सगरसिंहका प्रवेश।]

सगर०—बेटी, मैं एक राजपूत हूँ। तुम किसी प्रकारका भय मत करो। मैं देखता हूँ, तुम भी राजपूत स्त्री हो। तुम यहाँ अकेली क्यों हो?

कल्याणी—मेरे भइया एक दीआ और कुछ खानेको लानेके लिए इसी गाँवमें गये हैं।

सगर०—अच्छी बात है। जब तक वे लौटकर न आयँगे, तब तक मैं यहीं रहूँगा। इस स्थानपर मुसलमान सैनिकोंका उपद्रव बढ़ रहा है। उनमेंके चार पाँच आदमियोंको मैंने अभी यहीं पास ही देखा था। जब तक तुम्हारे भइया लौटकर न आवेंगे, तब तक मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा।

कल्याणी—आप यहीं ठहरकर मेरी रक्षा कीजिए—मुझे डर लगता है।

नैपथ्यमें—इसी टूटे घरमें!

नैपथ्यमें—हाँ, यहीं । । (कोई किवाड़ खटखटाता है ।)

कल्याणी—कौन ?—भइया ! भइया !

[तीन डाकू भीतर घुस आते हैं ।]

पहला डाकू—यही है, यही है ।

दूसरा डाकू—पकड़ो ।

(पहला डाकू कल्याणीको पकड़ना चाहता है, कल्याणी दूर हटकर चिल्लाती है—) " मुझे बचाओ, बचाओ । "

सगर०—(आगे बढ़कर) खबरदार !

पहला डाकू—यह कौन है ?

दूसरा डाकू—जो हो, पहले इसीको मारो ।

(सगरसिंह डाकुओंसे लड़ने लगते हैं और लड़ते लड़ते गिर पड़ते हैं ।)

कल्याणी—भइया, भइया !

[अजयसिंह आ पहुँचते हैं ।]

अजय०—कल्याणी, डरो मत । मैं आ गया । (अजयसिंह तलवार निकालकर डाकुओंपर वार करते हैं और उन्हें जमीनपर गिरा देते हैं ।)

अजय०—इन सबको तो मैंने खतम किया । और ये कौन हैं ?

कल्याणी—ये मेरी रक्षा करने आये थे, सो इन्हें चोट आ गई है ।

सगर०—तुम कौन हो ?

अजय०—मैं सेनापति गोविन्दसिंहका पुत्र अजयसिंह हूँ और यह मेरी बहन कल्याणी है ।

सगर०—कौन महाबतखाँकी स्त्री कल्याणी ?

अजय०—हाँ वीरवर, आप कौन है ?

सगर०—मैं उसी महाबतका पिता सगरसिंह हूँ ।

तीसरा दृश्य

स्थान—जोधपुरके महाराज गजसिंहका राजमहल । **समय**—प्रभात ।

[मारवाड़पति गजसिंह, पारिषद हरिदास, गजसिंहके पुत्र अमरसिंह और दूतके वेशमें अरुणसिंह ।]

गजसिंह—दूत, मेवाड़के महाराणाजीसे कह दो कि हम इस विवाहसे

सहमत नहीं हो सकते। जो लोग सम्राटके विद्रोही हैं, हम उनके साथ किसी प्रकारका सम्बन्ध नहीं रखना चाहते। क्यों जी हरिदास ?

हरिदास०—जी महाराज, बहुत ठीक, अवश्य, ऐसा ही होना चाहिए।

अरुण०—महाराज, हमारे महाराणा विद्रोही कैसे हुए ? मेवाड़ तो अभी तक मुगलोंके अधीन ही नहीं हुआ। जिस स्वाधीनताकी वह इतने दिनोंसे रक्षा करता आ रहा है, उस स्वाधीनताकी रक्षा करनेके प्रयत्नका नाम तो विद्रोह नहीं हो सकता।

गज०—नहीं, इसका नाम विद्रोह है। ऐसी दशामें जब कि सारा राजपूताना सिर झुकाकर मुगलोंकी प्रभुता स्वीकार करता है, अकेला मेवाड़ क्योंकर सिर उठाये रहेगा ?

अरुण०—मैं समझ गया। महाराजके मनमें ईर्षा हो रही है। सब पर्वतोंके शिखरोंपरसे गौरवकी किरणें उतर गई हैं, केवल मेवाड़के पर्वतोंको वे किरणें घेर रही हैं,—इसीको महाराज सहन नहीं कर सकते। सारे राजपूत राजाओंके सिर नंगे हैं, केवल मेवाड़के राणाका मुकुट उनके मस्तकको सुशोभित कर रहा है,—यह दृश्य अवश्य ही महाराजकी आँखोंका काँटा हो सकता है। लेकिन महाराज, इस गौरवसे महाराणाजीने तो आपको वंचित नहीं किया है; आप लोगोंने स्वयं ही अपने आपको उससे वंचित किया है। इसमें राणाजीका कोई दोष नहीं है।

गज०—दूत, तुम बड़े साहसी और धृष्ट हो। महाराज गजसिंहके सामने ऐसी बातें और कोई नहीं कर सकता। राणा यदि ऐसे ही मूढ़, उद्धत और उन्मत्त हों, जो वे समझते हों कि हम केवल बीस हजार राजपूतोंको लेकर ही भारत-सम्राटका मुकाबला करेंगे, तो यह उन्मत्तता उन्हींको शोभा देगी।

अरुण०—महाराजका कहना यथार्थ है। यह उन्मत्तता उन्हींको शोभा देती है। इस प्रकार उन्मत्त होनेकी शक्ति आपमें नहीं है। जो कुछ कहा, वह बहुत ही ठीक है।

गज०—दूत, तुम अवध्य हो, नहीं तो—

अरुण०—खैर, इतनी मनुष्यता तो आपमें है ! पर महाराज, भला यह बात आपने कहाँसे सीखी कि दूत अवध्य है ? आपके मुखसे इतनी बड़ी नीति, इतनी बड़ी बात, कैसे निकली ?

गज०—दूत, हमारे धैर्य्यकी भी कोई सीमा है। जाओ और राणासे कह दो कि हम यह विवाह नहीं करना चाहते ! जाओ—

अरुण०—महाराज, मैं जाता हूँ। पर एक बात कहे जाता हूँ। मैंने सुना है कि आपने दक्षिणमें बादशाहकी ओरसे अनेक युद्ध किये हैं और आपने गुजरात भी जीता है। मैं समझता हूँ कि इस बार आप मेवाड़ भी आवेंगे। इसके लिए मैं आपको निमंत्रण दिये जाता हूँ।

(अरुणसिंह जाना चाहता है)

गज०—अच्छी बात है। ऐसा ही सही। लेकिन दूत, ठहरो। तुम भी हमारे साथ ही चलना।

अरुण०—क्या आप मुझे कैद करेंगे ?

गज०—हाँ।—अमर, इसे कैद कर लो।

अमर०—यह क्यों पिताजी ? यह तो दूत है ! दूतपर अत्याचार करना क्षत्रियोंका धर्म्म नहीं है।

गज०—अमरसिंह, मैं तुम्हारे पास धर्म्माधर्म्म नहीं सीखना चाहता, तुम मेरी आज्ञाका पालन करो।

अमर०—पिताजी, मैं इस अन्यायपूर्ण आज्ञाका पालन नहीं कर सकता।

गज०—(बिगड़कर) क्या तुम मेरी आज्ञाका पालन नहीं कर सकते ? उद्धत बालक, सुनो, तुम मेरे सबसे बड़े पुत्र हो। पर यदि तुम मेरी बात नहीं मानते तो भविष्यमें यह राज्य तुम्हें नहीं मिलेगा, सिंहासन मेरे छोटे पुत्र यशवंतसिंहका होगा।

अमर०—आप अपना राज्य रखिए। मुगलोंके पैरोंकी ठोकरों और करुणासे आपका जो सिंहासन बना है, उस सिंहासनपर बैठनेकी मेरी तनिक भी इच्छा नहीं है। मुगलोंकी जूतियाँ सिर चढ़नेके लिए मुझे कोई आग्रह नहीं है।

गज०—अच्छी बात है। इसके दण्ड-स्वरूप मैं तुम्हें इसी समय अपने राज्यसे निकल जानेकी आज्ञा देता हूँ। जाओ।

अमर०—अभी जाता हूँ।

(अमरसिंह चले जाते हैं।)

गज०—(थोड़ी देर ठहरकर) जाओ दूत, मैं तुम्हें छोड़ देता हूँ।

चौथा दृश्य

स्थान—महाबतखाँके महलका बाहरी भाग । **समय**—रात ।

[महाबतखाँ अकेले बैठे हैं ।]

महाबत०—मैंने उसका परित्याग तो कर दिया है, पर फिर रहरहकर उसका ध्यान आता ही है । अब भी वह प्रेम-विह्वल और दमकता हुआ किशोर मुख मेरी आँखोंके सामने नाच रहा है । ऐसा जान पड़ता है कि मानों कोई रत्न खो गया है । मैंने उसका पत्र क्यों फेर दिया ! ऐसे शुद्ध और सच्चे प्रेमकी इस प्रकार अवज्ञा करके मैंने बहुत ही अनुचित कार्य किया । मैं अब सोचता हूँ कि उस समय मेरा उसके पिताके प्रति जो क्रोध था, उसके आवेशमें उसके उन्मुख प्रेमका तिरस्कार करके मैंने बहुत ही बुरा किया । यदि मुझे कहीं क्षमा माँगनेका अवसर मिलता, तो मैं दोनों हाथ जोड़कर उससे क्षमा माँगता । कौन ?

(एक पहरेदार आता है ।)

पहरेदार—खुदावन्द, महाराज गजसिंह हुजूरसे मुलाकात करना चाहते हैं ।

महाबत०—गजसिंह ? जोधपुरके राजा ?

पहरे०—हाँ खुदावन्द !

महाबत०—जाओ, उन्हें यहीं ले आओ ।

(पहरेदार जाता है ।)

महाबत०—महाराज गजसिंहका हमारे यहाँ क्या काम ? कायर, अधम, मुगलोंका दास । लो, वे आ ही गये ।

(गजसिंह आते हैं ।)

गज०—आदाब अर्ज है ।

महाबत०—तसलीमात । कहिए, आज महाराजने इस गरीबखानेको क्योंकर रौनक बख्शी ? क्या खबर है ?

गज०—बादशाह सलामतने जनाबको याद फरमाया है ।

महाबत०—यह उनकी बहुत बड़ी इनायत है । शायद मेवाड़की चढ़ाईपर जानेके लिए मैं याद किया गया हूँ ?

गज०—जी हाँ, जनाब !

महाबत०—इस बारेमें कई दफा बादशाह सलामतकी खिदमतमें अर्ज़

कर चुका। लेकिन फिर भी न मालूम क्यों वे बार बार इस तरह मुझे इज्जत बख्शते हैं।

गज०—शाही फौज कई बार मेवाड़में शिकस्त खा चुकी है। इसका बादशाह सलामतको बहुत मलाल है। इस बार लाचार होकर उन्हें फिर आपकी तरफ इशारा करना पड़ा है। इस वक्त सिर्फ़ आप ही एक बहादुर हैं, जो उन्हें इस तौहीनसे बचा सकते हैं। आप उनके सबसे बड़े खैरख्वाह और मददगार हैं।

महाबत०—यह आप क्या फरमाते हैं?

गज०—जनाब, यह तो तमाम जहान जानता है।

महाबत०—हूँ! (इधर उधर टहलने लगते हैं।)

गज०—खाँ साहब, इस बार आप मेवाड़की लड़ाईमें जरूर हथियार उठावें। मैं यह जानता हूँ कि मेवाड़ आपका वतन है। मैं यह भी जानता हूँ कि राणा अमरसिंह आपके भाई हैं। लेकिन साथ ही यह बात भी ख्याल रखनेकी है कि आप उसे एक मुद्दतसे बिलकुल ही छोड़ चुके हैं। आपने अपना असली मजहब भी छोड़ दिया है। मेवाड़के साथ आपका जो कुछ तअल्लुक था, उसको आपने मुसलमान होकर बिलकुल तोड़ दिया है। इस-लिए अब फिजूल पेसोपेश क्यों कर रहे हैं?

महाबत०—(कुछ कुछ स्वगत) अगर मेवाड़ मेरा वतन न होता!

गज०—क्या वतन आपको जबरदस्ती अपनी गोदमें उठा लेगा? जरा आप एक बार मेवाड़ जाइए तो सही। अगर आप लड़नेके लिए न जायँ, तो कमसे कम बिरादराना तौरपर ही जायँ। मेवाड़के लोग आपकी तरफ उँगलियाँ उठावेंगे और कहेंगे—“ यही प्रतापसिंहके भतीजे हैं, जो विधर्मी मुसलमान हो गये हैं! ” बड़े बूढ़े आपको देखकर नफरतसे मुँह फेर लेंगे, जवान आदमी गुस्सेभरी नजरोंसे आपकी तरफ ताकेंगे और औरतें झरोखोंमेंसे आपको कोसेंगी। खाँ साहब, आप इस बातकी जरा भी उम्मेद न रक्खें कि राजपूत कभी आपको अपना भाई समझकर गले लगावेंगे।

महाबत०—हूँ! (महाबतखाँ सोचने लगते हैं।)

गज०—उम्रभर आपको मुगलोंके साथ ही तअल्लुक रखना पड़ेगा। उनकी तरक्कीके साथ आपकी तरक्की है और उनके जवालके साथ आपका जवाल है। खाँ साहब, आप मेरी बातोंपर खूब गौर कर लें।

(संन्यासीके भेसमें सगरसिंह आते हैं।)

सगर०—महाबत,

महाबत०—कौन ? पिताजी, आप यहाँ और इस भेसमें कैसे ?

सगर०—मैंने अब संन्यास ले लिया है।

महाबत०—सो क्यों पिताजी ?

सगर०—महाबतखाँ, शायद तुम्हें आश्चर्य होता होगा और यह बात है भी आश्चर्य होनेकी। जिसने देश, जाति और धर्म्मको जलांजलि देकर अपना सारा जीवन नष्ट कर दिया और अपना अधिकांश समय विजातियोंकी करुणाका भिखारी बनकर गवाँया, वही अब अपने जीवनके सन्ध्या-कालमें फिर अपना मार्ग बदल रहा है लेकिन तुम जानते हो कि मैं क्यों इस रूपमें उठ खड़ा हुआ हूँ ?

महाबत०—नहीं पिताजी—

सगर०—इसलिए कि इतने दिनोंके बाद मैंने स्नेहमयी मातृभूमिकी पुकार सुनी है। माताका वह आह्वान कैसा गम्भीर, कैसा करुण, और कैसा गद्गद है,—महाबत, तुम उसकी कल्पना भी नहीं कर सकते। अब मैं अपने पापोंका प्रायश्चित्त करता हूँ और तुमसे भी यही कहनेके लिए यहाँ आया हूँ कि तुम भी अपने पापोंका प्रायश्चित्त कर डालो।

महाबत०—अपने पापोंका ?

सगर०—हाँ, अपने पापोंका। मैं स्वजनोंको छोड़कर मुगलोंका दास हुआ था; पर तुम मुझसे भी बढ़ गये। तुमने धर्म्म तक छोड़ दिया। इसलिए तुम्हारे पापोंकी सीमा नहीं है।

महाबत०—पिताजी, मुझे तो अपना कोई पाप समझमें ही नहीं आता ; यदि मेरा यही विश्वास हो कि इस्लाम धर्म्म सत्य—

सगर०—बेटा महाबतखाँ, तुम्हारा यह विश्वास किस प्रकार हुआ ? तुमने कुरान अवश्य पढ़ा है और है भी बहुत अच्छा ग्रन्थ। हिन्दूधर्म उसकी निन्दा नहीं करता और न उसके साथ इसका कोई विवाद ही है। लेकिन क्या तुमने वह अपना, अपने बाप-दादाओंका, व्यास, कपिल और शङ्कराचार्य्यका, धर्म्म छोड़नेसे पहले उसके ग्रन्थोंको भी पढ़ा था ? तुम्हारे समान मूर्ख और अनक्षरको धर्म्माधर्म्मका विचार कैसे और कहाँ हुआ ? जिस धर्म्मका मूल मंत्र प्रवृत्तिका दमन और आत्मजय है, जिस धर्म्मका

चरम विकास सर्व भूतोंपर दया करता है और वह दया भी ऐसी जो केवल मनुष्य-जाति तक ही परिमित न हो, बल्कि जिसके अनुसार एक चिउँटीका मारना भी निषिद्ध हो; उस धर्म्मको विना विचार किये छोड़कर महाबतखाँ, तुम नहीं जानते कि तुमने कितना बड़ा पाप किया है ।

महाबत०—पिताजी, मैं तो यह देखकर बहुत ही हैरान हो रहा हूँ कि आज आप—

सगर०—कि आज मैं धर्म्मकी व्याख्या करने बैठा हूँ । हैरान होनेकी बात ही है । बल्कि मैं तो आप ही हैरान हो रहा हूँ कि आज मैं क्या बन गया ! जो संसारमें धनके सिवा और कुछ जानता ही न था, उसीने धर्म्मके लिए संन्यास ले लिया । लेकिन महाबतखाँ, ऐसा कोई हृदय नहीं है, जिसमें उच्च प्रवृत्तिका ऊँचा स्वर बजानेवाला एक भी तार न बँधा हो । यदि संयोगवश किसी दिन घटनाकी उँगलीके आघातसे सहसा वह तार बज उठता है, तो एक ही क्षणमें सारे हृदयमें उथल-पुथल मच जाती है । आत्मा उस समय क्षुद्र स्वार्थकी केंचुलीसे मुक्त होकर अनन्त आकाशकी ओर बढ़ा चला जाता है । यह बात उस दिन कल्याणीने मुझसे कही थी ।

महाबत०—कल्याणीने ?

सगर०—हाँ, उस दिन उसीने मुझसे यह बात कही थी । इस समय भी उसकी वह बात मेरे कानोंमें संगीतकी स्मृतिके समान बज रही है । महाबतखाँ, क्या तुम्हें यह बात मालूम है कि कल्याणीके पिताने उसे घरसे निकाल दिया है ?

महाबत०—घरसे निकाल दिया है ? क्यों किस अपराधसे ?

सगर०—इसीलिए कि कल्याणी अब भी तुम्हारी-एक विधर्म्मीकी-पूजा करती है ।

महाबत०—आपसे और उससे कहाँ भेंट हुई ?

सगर०—एक गाँवके पास एक टूटी-फूटी कुटियामें ।

महाबत०—पिताजी, यही आपका उदार अति उदार हिन्दूधर्म्म है न ? मुसलमानोंके साथ हिन्दू इतनी घृणा, इतना विद्वेष करते हैं कि कल्याणीको उसकी पति-भक्तिका पुरस्कार 'घरसे निकल जाना' मिलता है । पिताजी, आप मुझसे प्रायश्चित्त करनेके लिए कहते हैं, तो मैं प्रायश्चित्त करूंगा और अवश्य करूँगा । लेकिन इसलिए नहीं कि मैं मुसलमान हो गया हूँ, बल्कि

इसलिए कि मैं किसी समय हिन्दू था। उसी हिन्दू होनेके पापका मैं प्रायश्चित्त करूँगा।—

सगर०—महाबतखाँ!

महाबत०—पिताजी, हिन्दुओंके प्रति मेरे हृदयमें जो बची-खुची थोड़ी बहुत अनुकम्पा थी, उसे भी आज मैंने दूर कर दी। आजसे मैं रग-रगसे, रोएँ-रोएँसे मुसलमान हो गया।

सगर०—महाबतखाँ!

महाबत०—पिताजी, आप यह जानते हैं कि मैं बहुत ही थोड़ी बातें करता हूँ। और मैं एक बार जो प्रतिज्ञा कर लेता हूँ, वह बहुत ही भीषण होती है।

सगर०—महाबतखाँ—

महाबत०—पिताजी, आप मेरा स्वभाव जानते हैं, अब आपके सारे उपदेश, सब युक्तियाँ, समस्त आदेश वृथा हैं।

(महाबतखाँ वहाँसे जाना चाहते हैं।)

सगर०—महाबतखाँ, यदि तुम्हारी इतनी अधिक अधोगति हो गई है, तो जाओ, मरो। इसी अन्धकूपमें मरो, पचो। म्लेच्छ! विधर्म्मी! कुलाङ्गार!

[सगरसिंह चले जाते हैं। सगरसिंहके चले जानेपर महाबतखाँ बहुत ही उत्तेजित भावसे इधर उधर टहलते हैं।]

महाबत०—(कुछ देर बाद) इतना विद्वेष! इतना आक्रोश! यदि ऐसी जाति बार बार मुसलमानों द्वारा पद-दलित हो, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है। यदि मुसलमान इसके बदलेमें उसके साथ सूदव्याजसहित और भी अधिक घृणा करें, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? यही इन लोगोंका उदार—अति उदार—सनातन हिन्दू धर्म्म है। मुसलमान-धर्म्ममें और चाहे जो हो पर इतनी उदारता और इतना महत्त्व तो है कि किसी दूसरे विधर्म्मीको अपनी छातीसे लगाकर अपनेमें मिला लेता है और हिन्दू धर्म्म, कोई विधर्मी सैकड़ों तपस्यायें करनेपर भी उसमें नहीं मिल सकता! इतना गर्व! इतना अहंकार! इतनी स्पर्धा! क्या अच्छा होता, यदि मैं यह अहंकार चूर्ण कर सकता! (गजसिंहसे) महाराज, मैं मेवाड़की चढ़ाईपर जाऊँगा। जाइए, आप बादशाह सलामतसे मेरी तरफसे यही अर्ज़ कर दीजिए।

(गजसिंह चकित होकर देखते हैं।)

महाबत०—महाराज, आपको ताज्जुब क्यों होता है ? आप जानते हैं, मैं मेवाड़की चढ़ाईपर क्यों जाता हूँ ?

गज०—इसलिए कि आप बादशाहके फरमाँबरदार और खैरख्वाह हैं।

महाबत०—जी नहीं, इसलिए नहीं बल्कि हिन्दू धर्मको जड़से उखाड़ फेंकनेके लिए और आप लोगोंकी सारी कौमको मटिया-मेट करनेके लिए। मैं उनका नामोनिशान भी न रहने दूँगा। समझ लिया ? अब आप बादशाह सलामतसे जाकर अर्ज़ कर दें।

(गजसिंह अभिवादन करके एक ओर और महाबतखाँ दूसरी ओर चले जाते हैं।)

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—जहाँगीरका दरबार। **समय**—सबेरा।

[बादशाह जहाँगीर और हिदायतअली।]

जहाँ०—यह हतक तमाम उम्र न भूलेगी। आखिर परवेजको हो क्या गया ? क्या उसमें इतनी भी कूवत न थी ? उसने शिकस्त क्यों कर खाई ?

हिदायत०—जहाँपनाह, मैं कसम खाकर कह सकता हूँ कि शाहजादा साहबकी शिकस्त खानेकी जरा भी ख्वाहिश न थी।

जहाँ०—तुम सब लोग फजूल हो, किसी मर्जकी दवा नहीं हो।

हिदायत०—बेशक। जहाँपनाहका फरमाना बहुत ही बजा है।

जहाँ०—हिदायत, तुम तो जंगमें कैद हो ही गये थे, वह तो राणाकी मेहरबानीसे किसी तरह तुम्हारी रिहाई हो गई। अब्दुल्लाने तो खैर लड़कर ही जान दी; लेकिन तुम तो वहाँ मर भी न सके !

हिदायत०—बेशक, जहाँपनाह, यह बन्दा तो खुद चाहता था कि जंगमें मारा जाय। मगर क्या अर्ज करूँ, मेरी बीबीको यह बात बिलकुल पसन्द न आई।

जहाँ०—चुप !

[सगरसिंह आते हैं।]

जहाँ०—यह लो, राजा सगरसिंह आ गये। राजा साहब !

सगर०—जहाँपनाह !

जहाँ०—आप मेवाड़के राणा बनाये जाकर चित्तौर भेजे गये थे; पर सुना कि आपने चित्तौरका किला राणा अमरसिंहके सुपुर्द कर दिया।

सगर०—जी हाँ खुदावन्द !

जहाँ०—किसके हुक्मसे ?

सगर०—मैंने उसके लिए किसीके हुक्मकी ज़रूरत नहीं समझी।

जहाँ०—क्यों ?

सगर०—इसलिए कि मैंने समझा कि इन्साफकी नजरसे राणा अमरसिंह ही उसके मालिक हैं।

जहाँ०—आपने समझा ?

सगर०—बेशक। मैंने सुना था शाहंशाह अकबरने बाकायदा लड़कर चित्तौरपर कब्जा नहीं किया था। उन्होंने धोखेसे जयमलकी जान ली थी।

जहाँ०—राजा साहब, आप कबसे इस तरहका इन्साफ करनेके काबिल हुए ?

सगर०—जिस दिन मैंने एक नई रोशनी, एक नया नूर देखा।

जहाँ०—नया नूर देखा ?

सगर०—जी हाँ। मैंने एक नया नूर देखा। मेरी आँखोंके सामनेसे एकाएक एक परदा उठ गया। महाराज रामचन्द्रके वक्तसे अब तकका मेवाड़का गुजरा हुआ जमाना मेरी आँखोंके सामने फिर गया। बाप्पा रावलकी फतहके किस्से, समरसिंह और चूँड़ाजीकी अपने मुल्कके लिए जाननिसारी, कुम्भकी बहादुरी वगैरह उम्दे उम्दे तमाशे देखे। एकाएक वहाँ कुहरा-सा छा गया और उसीमें मुझे प्रतापसिंहकी—अपने भाई प्रतापसिंहकी—तलवार चमकती हुई दिखलाई दी। मैं अपने आपको लानत-मलामत करने लगा।

जहाँ०—उसके बाद क्या हुआ ?

सगर०—मेरे मनमें इस बातका ख़याल पैदा हुआ कि मैं भी उन्हींके खानदानका हूँ; मगर मैंने उनके दुश्मनोंका साथ देकर बहुत ही बुरा किया। तो भी मैंने अपने आपको समझानेकी कोशिश की कि मैं जो कुछ कर रहा हूँ, वह बहुत ही मुनासिब है। उसके बाद एक दिन मैंने और भी अजीब नजारा देखा।

जहाँ०—हाँ हाँ, कहे चलिए। क्या देखा ?

सगर०—वह बात पुराने जमानेकी नहीं है, तवारीखकी नहीं है और पुराणोंके किस्सोंकी नहीं है। मैंने देखा कि मेरी लड़की—मुगलोंके इसी गुलाम बने हुए शख्सकी लड़की—अपने उसी मुल्कके लिये फटे-पुराने कपड़े पहनकर जंगलोंमें घूमती-फिरती है, जिस मुल्ककी आजादी छीननेके

लिए मैं मुगलोंके साथ मिला हूँ। मेरी आँखोंमें आँसू भर आये, मेरा गला रुँध गया; शर्म, फक्र, रिआजत और मुहब्बतसे मेरा दिल भर आया। मुझसे न रहा गया। मैं चित्तौरका किला अपने भतीजेके सुपुर्द करके चला आया।

जहाँ०—राजा साहब, आप मरनेके लिए तो तैयार होकर आये हैं न ?

सगर०—बेशक जहाँपनाह, मैं मरनेके लिए पूरी तैयारी करके आया हूँ। आगे मुझे मौतसे बहुत डर लगता था, लेकिन उस दिन मैंने एक नया सबक सीखा।

जहाँ०—कौन-सा सबक ?

सगर०—जान्-निसारीका सबक। दुनियामें दो बादशाहतें हैं, उनमेंसे एकका नाम खुदगरजी और दूसरीका नाम जान्-निसारी है। एककी पैदाइश दोजखसे है और दूसरीकी बहिश्तसे। एकका मालिक शैतान है और दूसरीका मालिक परमेश्वर या खुदा। मैं अब तक खुदगरजीके मुल्कमें रहता था, पर उस दिन मैंने जान्-निसारीका मुल्क देखा। उस मुल्कके मालिक बुद्ध, ईसा और गौरांग हैं; उस मुल्कका कानून मुहब्बत, रिआजत (भक्ति) और रहम है। वहाँका इन्तजाम है खिदमतगुजारी, सजा है मेहरबानी और इनाम जान्-निसारी। उसी दिनसे मैं उस मुल्ककी रिआया बन गया। जिन हाथोंसे मैंने आज तक कभी तलवार नहीं पकड़ी थी, उन्हीं हाथोंसे मैंने उस दिन गरीबोंकी मददके लिए तलवार पकड़ी और तब मुझे अपने कन्धोंपर डाकुओंकी तलवारकी चोट फूलोंकी-सी चोट मालूम होने लगी।

जहाँ०—उसके बाद क्या हुआ ?

सगर०—उसके बाद मैं मौतके-जरिये अपने पुराने गुनाहोंका बदला चुकानेके लिए यहाँ चला आया। आगे मैं मरनेसे बहुत डरा करता था; लेकिन अब मुझे उससे भी डर नहीं लगता। जो दिलोजानसे प्यार कर सकता हो और जिसने जान्-निसारीका सबक सीखा हो, उसे मौतका क्या डर ?

जहाँ०—बेहतर है। अब आप मरनेके लिए तैयार हो जाइए। (जहाँगीर एक चोपदारको इशारा करता है। चोपदार आगे बढ़ आता है।)

सगर०—जहाँपनाह, इसके लिए किसी दूसरे शख्स या जल्लादकी ज़रूरत नहीं है। (कमरसे कटार निकालकर अपनी छातीमें भोंक लेते हैं और वहीं गिरकर दोनों हाथ पसार कर कहते हैं—) "यही खून मेरे गुनाहोंका बदला हो।"

चौथा अंक

पहला दृश्य

स्थान—उदयसागरका किनारा। समय—चाँदनी रात।

[राणा अमरसिंह एक चबूतरेपर बैठे हैं। उदयसागरकी लहरोंका शब्द सुनाई पड़ रहा है। पास ही एक वृक्षपर एक कोयल बोल रही है। राणा आँखें बन्द करके उसीका कुहुकना सुन रहे हैं। कुछ दूरपर कुछ स्त्रियाँ 'होली' गाती और नाचती हैं।]

पीलू खम्माज

बन बंसी बजावत बनबारी ॥
देह गेहको नेह न राखत, नीर छीरकी सुधि बिसरावत,
बंसी सुनि बनको ही धावत, हैं व्याकुल सब ब्रजनारी ॥
चहक उठीं कुंजनमें चिरियाँ, लागी चलन वायु यहि बिरियाँ,
चटक उठीं फूलनकी कलियाँ, खूब बनी हैं मतवारी ॥
चन्द-किरन जमनामें गेरत, राधा राधा बंसी टेरत,
राधा भौंचक इत उत हेरत, कोयल कूक रही डारी ॥
हैं व्याकुल निकसीं सब बामा, तजि तजिके निज घरका कामा,
देखन चलीं चतुर घनश्यामा, है कैसो बंसीधारी ॥

राणा—ये सब होली खेलने और गानेमें ही मग्न हैं। यदि इस समय इनके पैरों-तले भूकम्प भी हो जावे, तो कदाचित् इन्हें मालूम न हो। क्या संसार है! मनुष्यको ये ही सब खिलौने देकर ही तो भुला रक्खा है! नहीं तो क्या कोई कभी इस मरु-भूमिमें रहनेकी इच्छा करता? संसार बड़ा छलिया है! यह लो मानसी आ गई!

[मानसी आती है।]

मानसी—पिताजी, आप अभी तक यहीं बैठे हैं! चलिए, महलमें पधारिए। यहाँ ठण्ड पड़ती है।

राणा—जरा ठहर जाओ; चलते हैं। यहाँ उदयसागरके किनारे बैठनेसे मन जरा शान्त होता है।—मानसी !

मानसी—हाँ पिताजी !

राणा—क्या तुम्हें भी कभी इस बातका ध्यान आता है कि संसार बड़ा छलिया है ?

मानसी—छलिया ?

राणा—हाँ, छलिया। मनुष्य कहीं विचार करके—चिन्ता करके—अमर न हो जाय, इसीलिए संसार उसके मनको तरह तरहकी और और चिन्ताओंमें फँसाये रहता है।

मानसी—पिताजी, मैं तो संसारको इतना बुरा नहीं समझती।

राणा--यह चाँदनी रात देखो, ये लहरोंके थपेड़ोंके शब्द सुनो, इस सुन्दर वायुका अनुभव करो, इन सब बातोंसे मनुष्यको अलग रखनेके लिए संसार उसे बल-पूर्वक खींचकर जीवनके छोटे-मोटे सुखों और दुःखोंकी ओर लिये जा रहा है। बेटी, अब तो मैं संसारको त्याग दूँगा। यह संसार खाली माया है।

मानसी—पिताजी, यदि इसे माया ही मान लें, तो यह बहुत ही मनोहर माया है। सचमुच यह बहिःप्रकृति बहुत ही सुंदर है। यह हम लोगोंपर बहुत कृपा रखती है। जब हम लोग ग्रीष्म ऋतुकी भीषण गरमीसे झुलस जाते हैं, तब तुरन्त ही मनोहर और गम्भीर गर्जना करती हुई वर्षा ऋतु आ जाती है और जल बरसाकर हम लोगोंको शीतल कर देती है। जब बहुत कड़े जाड़ेसे हम लोग ठिठुर जाते हैं, तब वसन्त ऋतु आकर अपनी मंद, सुगन्धित वायुसे शीतके परदेको उड़ा देती है। जब हम लोग दिनकी तीव्र ज्योतिसे घबरा जाते हैं, तब रात आकर माताकी तरह हम लोगोंका व्यथित मस्तक अपनी गोदमें ले लेती है। पर यहीं उसकी कृपाका अन्त नहीं होता है।

राणा—तो उसका अन्त कहाँ होता है ?

मानसी—मनुष्यके चिन्ता-जगतमें। पिताजी, आप इस सरोवरको देख रहे हैं ?

राणा—हाँ बेटी, देख रहा हूँ।

मानसी—इसपर चन्द्रमाकी किरणें पड़ती हुई दिखाई देती हैं न ?

राणा—हाँ बेटी, दिखाई देती हैं।

मानसी—आप इसे पकड़ सकते हैं ?

राणा—किसे ?

मानसी—इस चाँदनीको, जलके इन थपेड़ोंके कलकलको। जिस समय अँधेरेमें यह जल-तल छिप जायगा और हवा रुक जायगी, उस समय यह सौन्दर्य, यह संगीत कहाँ जायगा ?

राणा—तुम ही बतलाओ बेटी, कहाँ जायगा ?

मानसी—ठीक तो नहीं कह सकती कि कहाँ जायगा, पर इतना अवश्य है कि वह लुप्त नहीं होगा। वह रहेगा और बिखर जायगा—विरहीकी स्मृतिमें, कविके स्वप्नमें, माताके स्नेहमें, भक्तकी भक्तिमें और मनुष्यकी अनुकम्पामें। मनुष्यका जो कुछ सुन्दर है, पृथिवीकी ये किरणें, सुगन्ध, झंकार, नृत्य, सबको प्रकृतिने गढ़ा है। नहीं तो इस सौन्दर्य्यकी सार्थकता कहाँसे हो ?

राणा—बेटी, क्या मनुष्यका कुछ 'सुन्दर' कहे जाने योग्य है ? हम जिस समय अन्नका एक ग्रास मुँहकी ओर ले जाते हैं, उस समय सारा संसार ललचाई हुई आँखोंसे उस ग्रासकी ओर देखता है। मानों उस ग्राससे हमने उसे वंचित कर दिया हो। इतना लालच ! इतनी ईर्ष्या ! इतना द्वेष !

मानसी—यह तो लोगोंकी मानसिक व्याधि है। यदि यह व्याधि न होती, तो मनुष्यकी अनुकम्पाके लिए स्थान ही नहीं रहता। तब किसका दुःख दूर करके, किसका उद्धार करके मनुष्य सुखी होता ? पिताजी, क्या संसारको अधम मानकर छोड़ देना चाहिए ? संसार बड़ा दीन है, उसका उद्धार करना चाहिए।

राणा—तुम्हारी बात बहुत ठीक जान पड़ती है। मेरा सिर इस समय बहुत चकरा रहा है। मैं कुछ सोच-समझ नहीं सकता। (नैपथ्यसे)—मानसी !—मानसी !

मानसी—माँ, आती हूँ। पिताजी, अब आप भी पधारें। अँधेरा हो चला।

(मानसी जाती है।)

राणा—यह एक स्वर्गकी कहानी है, नीहारिका है, संसारका सारभूत सौन्दर्य्य है। सुन्दर हवा बह रही है, आकाशमें एक भी बादल नहीं है, संसार बिलकुल शान्त और निस्तब्ध है। केवल उदयसागरके ऊपरसे होकर संगीतकी लहरें जा रही हैं। मालूम होता है कि बहुत-सी किशोर स्वर्णाभायें

आकर इन्हीं लहरोंमें स्नान कर रही हैं। वे तरंगें उन्हींका मधुर हास्य है। पेड़ोंके पत्ते चाँदनीमें हिल रहे हैं और हवाके साथ खेल रहे हैं। यह मर्मर शब्द उनकी क्रीड़ाका कल-रव है। जान पड़ता है कि जड़ पदार्थ भी सौन्दर्यका अनुभव करते हैं।

[रानी आती है।]

रानी—महाराज !

राणा—जरा चुप रहो; हम स्वप्न देख रहे हैं।

रानी—क्या जागे जागे ही ? तब तो मैंने हार मानी।

राणा—जाने दो, मोह-भंग हो गया। हाँ, अब तुम कहो क्या हुआ ?

रानी—अब बाकी ही क्या रह गया ? आजकलकी लड़कियाँ अपने माँ-बापकी बात तो सुनती ही नहीं। उस दिन गोविन्दसिंहकी लड़की और लड़का दोनों अपने बापकी एक जरा सी बातपर घर छोड़ कर चले गये और कल—

राणा—फिर वही संसारका रोना, दुनियाका निकम्मा चरखा।

रानी—न जाने इन कलजुगकी लड़कियोंको क्या हो गया है ! हम लोगोंका भी तो कभी लड़कपन था ?

राणा—उस समय सतयुग रहा होगा। हम बहुत दिनोंसे यही देखते आ रहे हैं कि माताओंका जन्म तो सदा सतयुगमें होता है, पर उनकी लड़कियाँ जनमती हैं कलियुगमें। अच्छा, अब इन सब बातोंको छोड़ो और यह बतलाओ कि हमें क्या करना होगा।

रानी—मानसीका ब्याह करना हो तो अभी कर दीजिए; नहीं तो फिर आगे चलकर उसका ब्याह न होगा।

राणा—हमें भी ऐसा जान पड़ता है कि मानसीका ब्याह न होगा। हमारी समझमें उसका जन्म ब्याह करनेके लिए हुआ भी नहीं है।

रानी—बस बस, मैं समझ गई। आपके भी ये लच्छन अच्छे नहीं हैं, आप जागे जागे स्वप्न देखते हैं !

राणा—भला हम स्वप्न तो देखते हैं; तुम तो वह भी नहीं देखतीं।

रानी—अब क्या होगा ?

राणा—कौन जाने, देखो, क्या होता है !

रानी—देखें क्या ! जोधपुरसे आदमी लौटकर अभी तक नहीं आया। सत्यवतीके लड़केको जोधपुर भेजा था, वह कहाँ लौटा है !

राणा—अरुणसिंह वहाँसे लौट आया है।

रानी—लौट आया ? ब्याह कबका पक्का हुआ ?

राणा—महाराज हमारी कन्याके साथ अपने पुत्रका ब्याह न करेंगे।

रानी—क्यों ?

राणा—सुना है कि वे हमसे कुछ नाराज हैं।

रानी—क्यों ?

राणा—कारण यही मालूम होता है कि युद्धमें हम जीते और मुगल हार गये।

रानी—मैंने तो पहले ही कह दिया था कि मानसीका ब्याह न होगा। अब हो चुका ब्याह। ऐसे झमेलोंमें कहीं ब्याह होता है !

राणा—हम भी यही समझते हैं। मानसीका जन्म ब्याहके लिए नहीं हुआ है ! यह सब भूल है।

रानी—कैसी भूल ?

राणा—जोधपुरके राजकुमारके साथ मानसीके ब्याहका प्रस्ताव करना भूल; इतनी सेना लेकर मुगलोंके साथ युद्ध करने जाना भूल; हमारा तुम्हारा ब्याह हुआ सो भी भूल; हमारा राज्य, हमारा जीवन,—सब भूल।

रानी—यदि महाराज मुझसे ब्याह न करते तो मैं समझती हूँ कि वह भी एक भूल होती ! क्यों, हँसे क्यों ?

राणा—और हमने सुना है कि महाराज आगरे गये हैं।

रानी—क्यों ?

राणा—वहाँ जाकर बादशाहके कान भरेंगे और मेवाड़पर चढ़ाई करनेके लिए सेना भिजवावेंगे।

रानी—फिरसे ?–आप हँसते हैं, यह भी क्या हँसनेकी बात है ?

राणा—इससे बढ़कर हँसनेकी और कौन-सी बात मिलेगी रानी ? तुम भी खूब हँस लो।

रानी—क्या मैं भी आपके साथ पागल हो जाऊँ ?

राणा—अरे बड़ी बढ़िया खबर है रानी, अबकी सब नष्ट हो जायगा; कुछ भी न बचेगा।

रानी—जो चाहे सो हो, मैं यह सब नहीं सुनना चाहती। यह ब्याह जरूर होना चाहिए।

राणा—किस तरह ?

रानी—आप मारवाड़पर आक्रमण करें।

राणा—रानी, इतने दिनोंमें आज इस बातका एक प्रमाण मिला कि तुम क्षत्राणी हो। तुम जानती हो, शक्तिसे बड़ी भक्ति होती है। जोधपुरके महाराजमें जो मुगल-भक्ति है, वह हममें नहीं है। हममें केवल अपनी शक्ति है; और वह भी समाप्त हो चली है।

रानी—तब क्या यह अपमान चुपचाप सह लोगे ?

राणा—नहीं तो और क्या करेंगे ? चुपचाप सहन न करेंगे तो रो लेंगे, चिल्ला लेंगे। देखो, भोजन बना कि नहीं। डरकी कोई बात नहीं है। अबकी बार सर्वस्व नष्ट हो जायगा। जिस जातिमें इतनी क्षुद्रता हो, उसकी रक्षा स्वयं परमेश्वर भी नहीं कर सकता; मनुष्यकी तो बात ही क्या है !—जाओ।

रानी—लेकिन उसमें आपका क्या अपराध है ?

राणा—अपराध ? हमारा अपराध यही है कि हम और महाराज दोनों एक ही जातिके हैं। यदि किसी एक बैठनेवालेके दोषके कारण नाव डूबती है, तो उसके निर्दोष और निरपराध साथी भी उसीके साथ डूब जाते है।—जाओ।

(रानी जाती है।)

राणा—आकाश कैसा काला है !

[राणा चले जाते हैं। मानसी फिर आती है।]

मानसी—अजयसिंह विदेश चले गये ! भला जानेसे पहले एक बार भेंट तो कर जाते ! केवल एक पत्रमें—छोटेसे सूखे पत्रमें—ही आकर और इस बातको न जतलाकर कि मैं विदेश जाता हूँ ‘ सदाके लिए बिदा ’ ले जाते। अजय ! अजय ! नहीं, तुम बड़े निष्ठुर हो। मैं तुम्हारे लिए शोक न करूगी। चन्द्रमाकी ज्योति इतनी क्षीण क्यों है ? उदयसागरकी छाती अचानक इतनी मलीन क्यों हो गई ? प्रकृतिके मुखपरकी वह हँसी कहाँ चली गई ? (गाती है—)

खम्माज

सोई चंद्र वदन मोहि भावत है ॥
करत प्रकासित जो वसुधाको, मधुर रूप दरसावत है ॥
पास रहत जब, खिलत चाँदनी, दूर भये तम छावत है ।
चन्दा जात, जात नहिं सौरभ, फूलनसों जो आवत है ॥
समझ परत नहिं भेद कहा है, कोयल कूक सुनावत है ।
वाके बिना लगत जग सूनों, मन रहि रहि घबरावत है ॥*

दूसरा दृश्य

स्थान—मेवाड़ के पास महाबतखाँका खेमा । **समय**—प्रभात ।

[महाबतखाँ, शाहजादा परवेज और महाराज गजसिंह खड़े हुए बातें कर रहे हैं ।]

महाबत०—शाहजादा साहब, अब आप देर न करें। इस एक लाख फौजको लेकर आप चित्तौरका किला घेर लें ।

परवेज—बहुत खूब ।

[शाहजादा परवेज जाते हैं ।]

महाबत०—और महाराज, आप एक सिरेसे मेवाड़के सारे गाँव जलाना शुरू करें । अगर आपको कोई रोके, तो फौरन् उसे कत्ल कर डालें । मैं जानता हूँ, इस काममें आप बहुत ही काबिल और होशियार हैं। लेकिन एक बातका आप जरूर खयाल रक्खें कि औरतोंपर किसी किस्मका जुल्म होने न पावे ।

गज०—बहुत खूब ! मैं मेवाड़में एक भी राजपूत न रहने दूँगा ।

महा०—जी हाँ महाराज, मैं भी यह बात बहुत अच्छी तरह जानता हूँ कि मुसलमान राजपूतोंके उतने ज्यादा जानी दुश्मन नहीं हैं जितने राजपूत खुद अपने भाइयोंके हैं। हिन्दुस्तानकी पुरानी तवारीखें पढ़कर मैंने यह बात अच्छी तरह समझ ली है कि हिन्दुओंको अपने भाइयोंपर जुल्म करने और उन्हें तकलीफ पहुँचानेमें जितना मजा मिलता है, उतना और किसी काममें नहीं मिलता । मैं यह बात बहुत अच्छी तरह समझता हूँ कि राजपूतोंका

---

* यह 'मालकोस' रागमें भी गाया जा सकता है ।

नामोनिशान जितनी अच्छी तरह आप मिटा सकेंगे, उतनी अच्छी तरह और कोई न मिटा सकेगा। इसी लिए मैंने यह कार्य आपके सुपुर्द किया है। महाराजा साहब, अब आप जाकर अपना काम शुरू करें।—जाइए।

गज०—बहुत खूब!

(गजसिंह जाते हैं।)

महाबत०—हिन्दू! राजपूत! मेवाड़! खबरदार! यह एक कौमके साथ दूसरी कौमका मुकाबला नहीं है; यह एक मजहबका दूसरे मजहबके साथ मुकाबला है, देखें कौन जीतता है। (जाते हैं।)

तीसरा दृश्य

स्थान—उदयपुरका राज-प्रासाद। **समय**—रात।

[राणा अमरसिंह और सत्यवती]

राणा—क्या इस बार महाबतखाँ लड़ने आये हैं?

सत्य०—हाँ महाराज, इस बार महाबतखाँ ही आये हैं और उनके साथ एक लाखसे अधिक सेना है।

राणा—(ठँडी साँस लेकर) सत्यवती मैंने तो पहले ही कह दिया था।

सत्य०—क्या?

राणा—यही कि अबकी कुछ न बचेगा, सब नष्ट हो जायगा। सारा राजपूताना तो चला गया, क्या अकेला मेवाड़ सिर ऊँचा किये रहेगा? क्या यह बात भी विधातासे देखी जा सकती है? इस बार मेवाड़ भी जायगा। सत्यवती, तुमने नीचा सिर क्यों कर लिया? यह तो बड़े आनन्दकी बात है।

सत्य०—महाराज, क्या यह आनन्दकी बात है?

राणा—क्यों आनन्दकी बात क्यों नहीं? बिछौनेपर पड़ा पड़ा मेवाड़ और कब तक मृत्युकी यन्त्रणा भोगता रहेगा? इस बार उसकी यन्त्रणाका अन्त हो जायगा।

सत्य०—तो क्या महाराज युद्ध न करेंगे?

राणा—युद्ध न करेंगे? युद्धके सिवा और करेंगे ही क्या? इस बार सचमुच युद्ध होगा। अब तक तो लड़क-खेलवाड़ था। इस बार बड़ा आनन्द होगा, महा-विप्लव होगा। अबकी भाई भाईमें लड़ाई है। सारा भारत उसका तमाशा देखेगा।

सत्य०—मैंने सुना है कि महाबतखाँके साथ जोधपुरके महाराज गजसिंह भी आये हैं।

राणा—ओह! ठीक है। तो क्या उन्होंने हमारा निमन्त्रण स्वीकार कर लिया? हमने पहले ही सोचा था कि क्या महाराज हम लोगोंसे इतने नाराज हो जायँगे कि हमारा निमन्त्रण भी स्वीकार न करेंगे!

सत्य०—वही राजपुतकुलांगार—

राणा—क्या कहा?—अब कभी ऐसा न कहना। वह परम भक्त, परम वैष्णव है। हम ही मेवाड़-वंशके कुलांगार है, जो इतने दिनों तक हमने उस एक ईश्वरको न माना!—"दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो वा।"—गज-सिंह! वाह कैसा अच्छा नाम है! एकहीमें गज भी और सिंह भी! सूँड़ भी हिलाते हैं और केसर भी हिलाते हैं!—खूब!

सत्य०—राजपूतोंसे लड़ने आये हैं!

राणा—बिना इसके यज्ञ-नाश सम्पूर्ण कैसे होगा? महादेवके साथ जब तक नन्दी भृंगी न आवेंगे, तब तक काम कैसे चलेगा?—शास्त्रोंकी बात कभी झूठ नहीं होती।

सत्य०—हा हतभाग्य मेवाड़! (अपनी आँखोंके आँसू पोछती है।)

राणा—सत्यवती, विधाताने जिस समय भारतवर्षकी सिरजा था, उस समय उसके भाग्यमें लिख दिया था कि इसका सर्वनाश स्वयं उसकी सन्तान ही करेगी। तक्षशीलको याद करो, जयचंद्रकी बात याद करो, मानसिंह और शक्तसिंहको लो और उन्हींके साथ साथ महाबतखाँ और गजसिंहको भी देखो। ठीक मिलान मिलता है न? बिलकुल अक्षर अक्षर मिलता है। विधाताका लेख कभी व्यर्थ नहीं होता! जाओ सत्यवती, अब मैं सेना तैयार करता हूँ।

(सत्यवती जाती है।)

राणा—यदि कोई जाति नष्ट होती है, तो वह अपने ही दोषसे नष्ट होती है,-इसी प्रकार नष्ट होती है। जब जाति निर्जीव हो जाती है, तब व्याधि प्रबल हो उठती है और घर घर ऐसे ही बिभीषण जन्म लेते हैं।

[गोविन्दसिंह आते हैं।]

राणा—गोविन्दसिंहजी, कहिए क्या समाचार है?

गोविन्द०—महाराज, महाबतखाँ निरीह ग्रामवासियोंके घर जला रहे हैं।

राणा—जला रहे हैं ! उचित ही तो करते हैं।

गोविन्द०—उचित करते हैं ? हम इसका उनसे पूरा पूरा बदला लेंगे।

राणा—अवश्य । नहीं तो मेवाड़का ध्वंस पूरा कैसे होगा ?

गोविन्द०—महाराज युद्ध तो अवश्य ही करेंगे ?

राणा—युद्ध न करेंगे तो और करेंगे ही क्या ? गोविन्दसिंहजी, राजपूत-सेना कितनी होगी ? पाँच हजार तो होगी न ? वही बहुत है । मरनेके लिए इससे अधिक सेनाकी आवश्यकता नहीं होती। महाबतखाँकी सेना तो प्रायः एक लाख होगी न ? होने दो, उससे क्या होता जाता है !

गोविन्द०—राणाजी ! (सिर नीचा कर लेते हैं ।)

राणा—क्यों गोविन्दसिंहजी, आपने भी सिर नीचा कर लिया ? उठिए, जागिए । आज बड़े आनन्दका दिन है । घर घर मंगल-वाद्य बजने दीजिए, जगह जगह लाल निशान उड़ने दीजिए । उदयपुरके दुर्गपर एक बार अच्छी तरह मेवाड़की लाल ध्वजा फहराने दीजिए। खूब अच्छी तरह देख लीजिए। फिर दो दिनके बाद वह देखनेको न मिलेगी ।

गोविन्द०—महाराज, हम लोग लड़ेंगे और मरेंगे । लेकिन दुःख यही है कि तब भी माताकी रक्षा न कर सकेंगे ।

राणा—इसमें दुःख काहेका ? माता किसकी नहीं मरती ? हमारी माता भी मरेगी । माता किसीकी बहुत दिनों तक नहीं जीती । उसीके साथ साथ हम भी मरेंगे ।

गोविन्द०—महाराज, ऐसा ही हो ।

राणा—हाँ, ऐसा ही होगा । गोविन्दसिंहजी, आइए, मरनेसे पहले एक बार अच्छी तरह गले तो मिल लें। (गले मिलते हैं ।) अच्छा, अब जाइए, मरनेकी तैयारी कीजिए ।

[गोविन्दसिंह जाते हैं । रानी आती है ।]

राणा—रानी, खूब उत्सव करो ! आनन्द मनाओ !

रानी—क्या मानसीका ब्याह निश्चित हो गया ?

राणा—मानसीका नहीं, मेवाड़का ब्याह होगा ।

रानी—मेवाड़का ब्याह ? मेवाड़का ब्याह कैसा ?

राणा—अबकी ध्वंसके साथ मेवाड़का ब्याह होगा।

रानी—इसका क्या अर्थ ?

राणा—बड़ा बढ़िया अर्थ है। अबकी भाई भाईकी लड़ाई है। खूब आनन्द मनाओ। अबकी ब्याह होगा—विनाशके साथ!—ध्वंसके साथ!

(राणा जाते हैं।)

रानी—अब तो ये बिलकुल ही पागल हो गये। मैं पहलेहीसे समझती थी। चलो, घरभर पागल हो गया! अब मैं क्या करूँ?

[मानसी आती है।]

मानसी—माँ, पिताजीको क्या हो गया है? वे पागलोंकी तरह इधरसे उधर घूमते फिरते हैं। उन्हें क्या हो गया है?

रानी—और होना क्या है? वे पागल हो गये हैं। जाऊँ, देखूँ।

[रानी जाती है।]

मानसी—यह महाबतखाँ राजपूत है! यह गजसिंह भी राजपूत है! इतनी ईर्षा! इतना द्वेष! हाय रे अधम जाति! तेरा पतन न होगा तो और किसका होगा! भाई भाईमें ही लड़ाई हो, तो फिर कौन बचा सकता है!

चौथा दृश्य

स्थान—मेवाड़के एक गाँवका रास्ता। **समय**—सन्ध्या।

[सत्यवती और अरुण चले आ रहे हैं।]

सत्यवती—अरुण!

अरुण—क्यों माँ!

सत्य०—चलनेमें कष्ट होता है?

अरुण—नहीं माँ।

सत्य०—आज हम लोग इसी गाँवमें ठहरेंगे।

अरुण—क्यों, यहाँ क्या काम है?

सत्य०—गाँववालोंसे चलनेके लिए कहना है।

अरुण—कहाँ?

सत्य०—लड़ाईपर। मेवाड़का वीर-कुल नष्ट हो गया। अब नये वीर-कुलकी सृष्टि करनी पड़ेगी। पूजाका नया प्रबंध करना पड़ेगा। चलो, चलें। सन्ध्या होती है। (दोनों जाते हैं।)

[कई देहाती आते हैं।]

पहला देहाती— ऐसा बढ़िया देश, अबकी बार गया समझो।

दूसरा देहाती—अबकी बार स्वयं महाबतखाँ आये हैं। अब रक्षा नहीं हो सकती।

तीसरा देहाती—महाबतखाँ क्या खूब लड़ना जानते हैं ?

दूसरा देहाती—ओह ! क्या पूछना है।

चौथा देहाती—हैं: ! उन्होंने लड़ना कब सीख लिया ? मैंने तो अभी उन्हें उस दिन पैदा होते देखा था।

दूसरा देहाती—इस तरह तो सभीको कोई न कोई पैदा होते देखता है। पर इससे क्या यह सिद्ध हो जाता है कि वह लड़ना नहीं जानता ?

चौथा देहाती—भइया, तुम तो बड़े न्यायशास्त्री हो !

पहला देहाती—देखो, मालूम होता है, इस गाँवमें आग लगी है।

सब—कहाँ ?

पहला दे०—वह देखो, धुआँ उठ रहा है।

चौथा दे०—वह ? वह तो बादल है।

दूसरा दे०—क्या बादल जमीनसे उठकर ऊपर जाता है ? बादल भी कहीं घूमता है ? वह घूम रहा है।

चौथा दे०—तो धूल उड़ती होगी।

दूसरा दे०—हाँ, क्यों नहीं ! धूलका रंग काला होता है न !

चौथा दे०—अरे यार, तुम तो बड़े भारी हुज्जती दिखाई देते हो।

पहला दे०—और, यह गाँववालोंकी चिल्लाहट नहीं सुनाई पड़ती ?

बाकी सब—हाँ हाँ।

चौथा दे०—अरे, लोग गाते होंगे। नहीं तो गधा रेंकता होगा।

दूसरा दे०—दोनोंकी आवाज एक ही तरहकी होती है न ! क्यों पाँड़ेजी !

पहला दे०—यह देखो, बहुतसे गाँववाले रोते चिल्लाते इसी तरफ आ रहे हैं।

तीसरा दे०—और उनके पीछे पीछे सिपाही गोलियाँ चलाते आ रहे हैं।

(नैपथ्यमें)—दोहाई है ! दोहाई है साहब ! मारो मत ! मारो मत !

पहला दे०—हाय हाय ! बेचारे सब—

[कल्याणी और अजयसिंह आते हैं।]

अजय०—(देहातियोंसे) भइया, तुम लोग खड़े खड़े क्या देख रहे हो, जरा इन लोगोंको बचाओ।

सब—भला हम लोग क्या करें ?

अजय०—तब क्या तुम चुपचाप खड़े खड़े यह अत्याचार देखा करोगे ?

चौथा दे०—और नहीं तो क्या उनके पीछे प्राण देंगे ? चलो भइया, भागें। वे इसी ओर आ रहे हैं।

कल्याणी—क्या भागनेसे बच जाओगे ? कभी नहीं। तुम लोगोंकी भी बारी आती है। कोई भी न बचेगा। तुम लोगोंके घर जलाये जायँगे।

पहला दे०—उँह, जब जलाये जायँगे तब देखा जायगा। आयु रहते कभी कोई मरता है ? लो, ये लोग तो आ गये। भागो भागो।

(अजयसिंह और कल्याणीके सिवा सब भाग जाते हैं।)

अजय०—यह चिल्लाहट तो और भी पास आती जाती है। यह बन्दूकका शब्द ! कल्याणी, तुम जरा एक ओर हटकर खड़ी हो जाओ। मैं इन लोगोंको बचाऊँगा।

कल्याणी—हाँ भइया, जहाँ तक हो सके इन लोगोंको बचाओ।

(कल्याणी वहाँसे थोड़ी दूरपर चली जाती है।)

अजय०—कल्याणी, यह तो मैं नहीं कह सकता कि मैं इन लोगोंको बचा सकूँगा या नहीं; पर हाँ, इनके लिए अपने प्राण अवश्य दे सकूँगा ! मैंने मानसीसे जो महामन्त्र सीखा है, आज उसीका साधन करूँगा। लो, ये आ रहे हैं। (म्यानसे तलवार निकाल लेते हैं।)

[हाँफते हुए कई देहाती और उनके पीछे नंगी तलवारें लिये हुए बहुतसे मुगल सिपाही आते हैं।]

देहाती—महाराज, हमें बचाइए, हमें बचाइए। (अजयसिंहके पैरोंपर गिर पड़ते हैं।)

अजय०—(सिपाहियोंसे) खबरदार !

पहला सिपाही—चुप रहो ! (तलवार उठाता है।)

[अजयसिंह उसे तलवारसे मारकर जमीनपर गिरा देते हैं। बाकी सिपाही अजयसिंहके साथ लड़ने लगते हैं। एक एक करके सब मुगल-सिपाही जमीनपर गिर जाते हैं। इसके बाद थोड़ेसे सिपाही और आ जाते हैं।]

अजय०—कल्याणी, अब रक्षा नहीं हो सकती, भागो।

कल्याणी—भइया, तुम यहाँ प्राण दोगे और मैं भाग जाऊँगी ?

[कल्याणी आगे बढ़ आती है। उसी समय एक मुगल सिपाहीकी गोली लगनेसे अजयसिंह गिर पड़ते हैं।]

कल्याणी०—(दौड़कर) भइया ! भइया !

दूसरा सि०—यह कौन है ? पकड़ो इसे।

तीसरा सि०—नहीं जी, सिपहसालार साहबका हुक्म है कि औरतोंपर किसी तरहका जुल्म न किया जाय।

अजय०—कल्याणी, मैं मरता हूँ। ईश्वर तुम्हारी रक्षा करे।

(अजयसिंह छटपटाकर मर जाते हैं।)

कल्याणी—(रोती हुई) भइया ! भइया ! कहाँ चले ?

(अजयसिंहकी लाशपर कल्याणी गिर पड़ती है।)

चौथा सि०—और कहाँ जायँगे ? वहीं, जहाँ एक दिन सबको जाना है।

कल्याणी—(शान्त होकर) नहीं, मैं शोक नही करूँगी।—क्षत्रवीर, तुमने अपना कर्त्तव्य किया है। तुमने दीनों और असहायोंकी रक्षामें अपने प्राण दिये हैं। और ये लोग ? ये सब शैतानके दूत हैं, लहूके प्यासे हिंसक पशु हैं। ये बिना किसी अपराधके दूसरोंके घर जलाते हैं, बेचारे देहातियोंकी हत्या करते हैं। इन लोगोंके लिए हे भगवान्, नरकमें भी स्थान नहीं मिले।

पहला सि०—इसमें हम लोगोंका क्या कुसूर है ? हम लोग तो अपने सिपहसालारके हुक्मसे लोगोंके घर जलाते हैं और उनकी जान लेते हैं।

कल्याणी—तुम लोगोंका सिपहसालार कौन है ?

दूसरा सि०—तुम्हें नहीं मालूम ? महाबतखाँ साहब।

तीसरा सि०—चलो, जाने भी दो।

कल्याणी—क्या उन्हींका यह हुक्म है ? ऐसा कभी नहीं हो सकता

चौथा सि०—चलो, चलो।

कल्याणी—ठहरो, मैं भी चलूँगी।

पहला सि०—तुम कहा चलोगी ?

कल्याणी—तुम्हारे सिपहसालारके पास।

दूसरा सि०—तुम्हें वहाँ ले-चलकर क्या हम लोग—

तीसरा सि०—और नहीं तो क्या हम लोग आफतमें पड़ेंगे ?

चौथा सि०—अरे यह खुद ही चलना चाहती है, तो क्या हर्ज है ? ले चलो।

पहला सि०—अच्छा चलो।

कल्याणी—चलो।

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—उदयपुरकी राजसभा। **समय**—प्रभात।

रघुवर०—महाराज, जहाँ तक हो सका हम लोग लड़े। पर अब और लड़ना असंभव है।

राणा—नहीं रघुवर, हम अवश्य लड़ेंगे। हम कोई बाधा न मानेंगे, एक भी न सुनेंगे। सेना तैयार है?

केशव—महाराज, सेना है ही कहाँ? सारे मेवाड़में पाँच हजार सेना भी संग्रह की जा सकेगी या नहीं, इसमें संदेह है। इतनी सेना लेकर क्या एक लाख सेनाके साथ लड़ना सम्भव है?

राणा—असम्भव कुछ भी नहीं है। हमारी यह पाँच हजार सेना पाँच लाख सेनाके बराबर है।

जयसिंह—महाराज, इस समय मुगलोंके साथ सन्धि कर लेना ही उत्तम है।

राणा—नहीं, यह कभी नहीं हो सकता। जब हम सन्धि करना चाहते थे, तब किसीने हमारी बात न सुनी। उस समय मुगल स्वयं सन्धि करना चाहते थे। पर अब वह समय निकल गया। अब हम प्रार्थना करके मुगलोंके साथ संधि नहीं कर सकते।

केशव—किन्तु—

राणा—अब इस सम्बन्धमें कोई कुछ मत कहो। अब कोई उपाय नहीं है। अब लड़ना और मरना ही पड़ेगा। क्यों गोविन्दसिंहजी?

गोविन्द०—हाँ महाराज, हम प्राण देंगे, पर मान न देंगे।

राणा—आप ठीक कहते हैं गोविंदसिंहजी, प्राण देंगे, पर मान न देंगे।

रघुवर—महाराज!—

राणा—नहीं, अब हम कुछ भी नहीं सुनना चाहते। हम खाली युद्ध करना चाहते हैं—युद्ध। सेना सुसजित करो, मेवाड़की लाल ध्वजा उड़ाओ, रण-भेरी बजाओ। जाओ तैयार हो जाओ।

(राणा अमरसिंहके अतिरिक्त और सब लोग चले जाते हैं।)

राणा—मेवाड़! सुन्दर मेवाड़! आज हम तुम्हारा यह कैसा सौन्दर्य्य देख रहे हैं! इसे तो पहले और कभी नहीं देखा था। तुम्हारे वस्त्र फट गये

हैं, सारे शरीरमें धूल लगी है, बाल इधर उधर बिखरे हुए हैं। इसी वेशमें वे तुम्हें वध्य-भूमिकी ओर ले जा रहे हैं। माता, यह तुम्हारा कैसा सौन्दर्य्य है! आज इतने दिनों बाद हमने तुम्हें पहचाना है। इतने दिनों तक तुम्हारे सौभाग्य-सूर्य्यकी किरणोंने तुम्हें ढँक रक्खा था; पर अब वह सूर्य्य ढल गया है, इसी लिए आज हम तुम्हारे उसी आकाशमें यह कैसा अपूर्व और अद्भुत प्रकाश निकलता हुआ देख रहे हैं! यह कैसी ज्योति है! कसी नीलिमा है! कैसी नीरव महिमा है!

छट्ठा दृश्य

स्थान—महाबतखाँका डेरा। **समय**—प्रभात।

[महाबतखाँ और गजसिंह खड़े हुए हैं।]

गज०—राणा अपनी फौजको साथ लेकर लड़ने आये थे?

महाबत०—हाँ महाराज, पर वे लौटे अकेले ही। उनके पाँच हजार सिपाहियोंमेंसे चार हजार सिपाही मैदाने जंगमें काम आये।

गज०—सिर्फ पाँच हजार फौज लेकर एक लाख फौजसे लड़ने आये थे? गजबकी हिम्मत है!

महाबत०—हाँ, हिम्मत तो है ही लेकिन महाराज, आज मुझे एक बातका बहुत ही फक्र हो रहा है।

गज०—हाँ खाँ साहब, फक्र करनेकी बात ही है।

महाबत०—लेकिन आप शायद इस बातका खयाल भी नहीं कर सकते कि मुझे फक्र क्यों हो रहा है। क्या आप उसकी वजह जानते हैं?

गज०—फरमाइए।

महाबत०—मुझे इस लिए फक्र हो रहा है कि मुसलमान होनेपर भी इसी राजपूत कौमका हूँ और मैं इन्हीं अमरसिंहका भाई हूँ। जो शख्स पाँच हजार सिपाहियोंको साथ लेकर हमारी एक लाख फौजके साथ लड़ने आया था, वह गोया अपनी जान ही देने आया था। अपने मुल्कके लिए ऐसी जान्-निसारी, ऐसी बे-खौफी और ऐसी हिम्मतका काम राजपूत ही कर सकते हैं। और मैं भी उन्हीं राजपूतोंमेंसे हूँ।

गज०—बेशक, बेशक।

महाबत०—और आप भी तो वही राजपूत हैं; आप भी फक्र करें।

लेकिन चूँकि आप गिर गये हैं, इसलिए शर्मसे सिर भी झुकावें। आप गौर करें कि आप क्या हो सकते थे और क्या हो गये? मेरी बात छोड़ दीजिए। मेरे लिए कमसे कम इतनी जगह तो आँसू पोंछनेके लिए है कि मैं अब राजपूत नहीं हूँ। मैं किसी जमानेमें राजपूत था और आप अब भी राजपूत हैं।

गज०—लड़ाईमें राणा मारे नहीं गये, और कैद भी नहीं हुए?

महाबत०—नहीं, मैंने हुक्म दे दिया था कि वे मारे या कैद न किये जायँ। ऐसा दुश्मन दुनियाँके फक्रकी चीज है। मैं वह फक्र तोड़ना नहीं चाहता।

गज०—अच्छा, अब मुझे इजाजत हो।

महाबत०—हाँ हाँ, आप तशरीफ ले जा सकते हैं।

(गजसिंह जाते हैं।)

महाबत०—वे सामने जलते हुए गाँव दिखाई देते हैं। गाँववालोंकी रोने चिल्लानेकी आवाजें सुनाई पड़ती हैं। हिन्दुओ, तुम लोग अपने मजहबका बड़प्पन लेकर मरो। आज मैंने तुम्हारी सारी शेखी किरकिरी कर दी,—सारा दंभ, घमण्ड और सारा बैर पीस कर रख दिया। तुम्हारी—

[चार सिपाहियोंके साथ कल्याणी आती है।]

महाबत०—यह कौन हो?

पहला सि०—खुदावन्द, हम लोग इसे बिलकुल नहीं जानते। यह रास्तेमें मिली थी और खुद ही हम लोगोंके साथ यहाँ तक चली आई है।

महाबत०—(कल्याणीसे) तुम कौन है?

कल्याणी—मेरा परिचय पाकर आपको कोई लाभ नहीं होगा।

महाबत०—तुम क्या चाहती हो?

कल्याणी—मैं आपके पास एक बातका न्याय करानेके लिए आई हूँ।

महाबत०—किस बातका न्याय?

कल्याणी—आपके इन सिपाहियोंने मेरे निर्दोष भाईकी हत्या की है!

महाबत०—तुम्हारे भाईकी हत्या की है? किस प्रकार? सिपाहियो!

पहला सि०—खुदावन्द, हम लोग गाँववालोंकी कत्ल कर रहे थे। इस औरतका भाई उनकी तरफसे हम लोगोंके साथ लड़ने लगा और लड़ाईमें मारा गया।

महाबत०—(कल्याणीसे) क्या यह बात ठीक है?

कल्याणी—हाँ ठीक है। आपके सिपाही बेचारे गाँववालोंकी हत्या कर रहे थे। मेरे भाई उन्हें बचाने गये, तो इन लोगोंने उन्हें भी मार डाला।

महाबत०—तब तो ये लड़ाईमें मारे गये ?

कल्याणी—ऐसा ही सही । इन लोगोंने उन्हें लड़ाईमें मार डाला ।

महाबत०—तब देवी, इसमें इन लोगोंका अपराध नहीं है। मैंने इन लोगोंको ऐसी ही आज्ञा दी थी। सिपाहियो, तुम लोग बाहर जाओ ।

(सिपाही वहाँसे चले जाते हैं ।)

कल्याणी—क्या आपने बेचारे निरपराध गाँववालोंकी हत्या करनेकी आज्ञा दी थी ?

महाबत०—हाँ, मैंने हत्या करनेकी आज्ञा दी थी।

कल्याणी—और गाँव जलानेकी भी ?

महाबत०—हाँ ।

कल्याणी—मुझे विश्वास नहीं होता। आप इतने निष्ठुर नहीं हो सकते ।

महाबत०—मेरे सम्बन्धमें तुम्हारी ऐसी उच्च धारणाका क्या कारण है ?

कल्याणी—मेरे स्वामी ऐसे निष्ठुर नहीं हो सकते ।

महाबत०—तुम्हारे स्वामी ?

कल्याणी—हाँ, मेरे स्वामी। प्रभो, अच्छी तरह देखिए, आप मुझे पहचान सकते हैं या नहीं। मैं आपकी परित्यक्ता हिन्दू पत्नी कल्याणी हूँ ।

महाबत०—कल्याणी ? कल्याणी, तब क्या इन लोगोंने तुम्हारे भाई अजयसिंहकी हत्या की है ?

कल्याणी—हाँ । मैंने जिस दिन आपका ध्यान करके, आपके प्रेमको अपने जीवनका ध्रुव तारा बनाकर, अपनी छोटी-सी नावको इस अनन्त संसार समुद्रमें छोड़ा था, उस दिन मेरे भाई अजय बहुत ही आनन्दपूर्वक अपनी इच्छासे मेरी रक्षा करनेके लिए इस दुःखमें मेरे साथी हो गये थे। रास्तेमें आपके कुछ दुष्ट सिपाहियोंसे एक बार मुझे बचाते समय वे बुरी तरह घायल हो गये थे। मैंने बहुत दिनों तक एक टूटी फूटी कुटीमें रहकर उनकी सेवा की थी और पासके गाँवोंसे भीख माँगकर उन्हें खिलाया और बचाया था। आपने मेरे ऐसे भाईके प्राण ले लिये। नाथ, अब मैं भी क्यों बची रहूँ ?

महाबत०—नहीं नहीं, तुम मुझे क्षमा करो ।

कल्याणी—क्या इतने गाँववालोंकी हत्या आपकी ही आज्ञासे हुई है ?

महाबत०—हाँ, मेरी ही आज्ञासे हुई है। मैंने अपने सिपाहियोंको राजपूत-जातिका नाश करनेकी आज्ञा दी थी।

कल्याणी—हे ईश्वर, तुमने यह क्या किया ? यही मेरे आराध्य देवता हैं? इन्हीं घातकका ध्यान करके मैं संन्यासिनी हुई थी ? क्या मेरे लिए मृत्यु भी नहीं थी ? भगवान्, एक ही दिन, एक ही साथ, स्वामी और भाई दोनोंको खो बैठी ! आज मेरे समान अभागिनी कौन होगी ! (मुँह ढँक लेती है ।)

महाबत०—लेकिन तुम जानती हो कि मैंने क्यों—

कल्याणी—नहीं प्रभो, मैं यह जानना भी नहीं चाहती। मेरा मोह भंग हो गया। मैं इतने दिनोंतक आपकी पूजा करती थी, पर आजसे मैं आपको परम शत्रु समझती हूँ। मैं मुगलोंको उतना शत्रु नहीं समझती जितना आपको समझती हूँ। मुगल हमारे कोई नहीं हैं। उनका धर्म्म उन्हें इस बातकी शिक्षा देता है कि वे काफिरोंका वध करें। लेकिन आप तो इस देशकी सन्तान हैं, आपकी नसोंमें तो विशुद्ध राजपूत-रक्त है। आप भी तुच्छ धनके लोभसे और विद्वेषसे, अपनी जातिका नाश करने लग गये ! नाथ, मैं क्या कहूँ ! आप मुगलोंसे भी बढ़ गये। वे केवल मेवाड़ जीतना चाहते हैं, बेचारे गरीब देहातियोंके घर फूँकना नहीं चाहते। पर आप उनकी कमी भी पूरी कर रहे हैं। आपने उनके धर्म्मकी जूठन खाकर अपने इन हत्यारे सैनिकोंको—इन घृणित मांस-लोलुप नर-कुक्करोंको—बेचारे गाँववालोंपर छोड़ दिया है। आपने मेवाड़को श्मशान बना दिया है। निर्दोष मनुष्योंके हाहाकारसे सारा आकाश गूँज रहा है। पर मुगलोंकी ऐसी इच्छा कभी नहीं थी। ईश्वर, क्या ऐसे देशद्रोहियोंके लिए तुम्हारे यहाँ कोई दण्ड नहीं है ? अब भी इनपर आकाशसे वज्र क्यों नहीं गिरता ?

महाबत०—कल्याणी, मैं इस युद्धमें केवल तुम्हारे कारण प्रवृत्त हुआ हूँ।

कल्याणी—मेरे कारण ? झूठ।

महाबत०—नहीं, झूठ नहीं, सच। मैंने जिस दिन सुना कि तुम्हारे पिता मुसलमानोंसे घृणा करते हैं, इसी कारण उन्होंने तुम्हें घरसे निकाल दिया, उसी दिन, उसी समय, मैंने मेवाड़के विरुद्ध अस्त्र धारण किया।

कल्याणी—यदि यह बात मान भी ली जाय, तो भी आप धर्म्मके किस सिद्धान्तके अनुसार एक मनुष्यके अपराधके कारण सारी जातिका नाश करनेके लिए तुल गये ?

महाबत—इसमें क्या तुम्हें आश्चर्य होता है ? क्या एक रावणके पापके कारण सारी लंका ध्वंस नहीं हुई ? और फिर मुसलमानोंके साथ यह विद्वेष

अकेले तुम्हारे पिताका ही तो नहीं है। तुम्हारे पिताने तो समस्त मुसलमानोंके प्रति जो समस्त हिन्दुओंका विद्वेष है, उसे ही प्रकट किया था। मैं हिन्दुओंके उसी जातिगत विद्वेषका बदला लेने आया हूँ।

कल्याणी—लेकिन मुगल-सेनापति, इसका बदला यदि कोई लेना चाहे तो वह जातिका मुसलमान ले सकता है। आप जब स्वयं मुसलमान हुए थे, तब हिन्दुओंका यही मुसलमान-विद्वेष जानकर मुसलमान हुए थे। नाथ, आपने अपनी यह दशा आप ही बनाई है। आप वृथा क्यों यह समझकर अपने मनको प्रबोध देते हैं कि आप एक अन्यायका प्रतीकार करने बैठे हैं? आपमें जो कुछ मुसलमानपन है, आपसे यह काम वह नहीं करा रहा है; बल्कि आपमें जो अहम्मति—महाबतखाँपन—है, वही आपसे यह काम करा रहा है।

महाबत०—(कुछ कुछ स्वगत) हैं! क्या यह बात ठीक है?

कल्याणी—आप उसी व्यक्तिगत द्वेषके कारण मेवाड़का नाश करनेपर उतारू हुए हैं। यही आपका धर्म्म है! यही आपकी शूरता है! यही आपका मनुष्यत्व है! हे ईश्वर, यह तुमने क्या किया! मैं इतने दिनों तक हवामें जो महल बना रही थी, आज तुमने उसे मिट्टीमें मिला दिया!

महाबत०—कल्याणी—

कल्याणी—बस बस, अब मेरा मोह भंग हो गया। मैंने समझा था कि आप मेरे स्वामी हैं, मैं आपकी स्त्री हूँ। इसी लिए मैंने एक दिन बड़े अभिमानसे कहा था—'हम लोगोंको कौन अलग कर सकता?' लेकिन नहीं, अब मैं देखती कि आपके और मेरे बीचमें एक बड़ा भारी समुद्र है। हम दोनोंके बीचमें मेरे भाईका मृत शरीर पड़ा हुआ है; और उससे भी बढ़कर हम दोनोंके बीचमें मेरे स्वदेशके रक्तकी नदी बह रही है?' निष्ठुर, देशद्रोही, लहूके प्यासे, हत्यारे! ऊः!—हे ईश्वर! हे विधाता! ऐसे नीच, हिंस्र, अपने भाइयोंकी हत्या करनेवाले और मुट्ठीभर जूठनके भिखारियोंका विकट अट्टहास सुनकर कहीं अन्तमें तुमपरसे भी मेरा विश्वास न उठ जाय!

(कल्याणी चली जाती है।)

पाँचवाँ अंक

पहला दृश्य

स्थान—उदयपुरका राजप्रासाद । समय—रात

[मानसी अकेली गाती है ।]

सोहनी

प्यारे, कहि न सकी कछु हाय ।
कितनी मैं चाहति तोहि पीतम, सकी न सोउ बताय ॥
लागी कहन, गरौ भरि आयौ, मौन रही पछताय ।
मनकी बात रही है मनमें, करौं सु कौन उपाय ॥
मुँह नाहिं खुल्यौ, फटति जो छाती, तौ मैं देति दिखाय ।
तेरी मोहन मूरत मेरे, हियमें रही समाय ॥

[राणा आते हैं ।]

मानसी—पिताजी, आप युद्धसे लौट आये ?

राणा—हाँ बेटी

मानसी—क्यों ? क्यों ? क्या हुआ पिताजी ?

राणा—चुप रहो, चुप रहो । बोलो मत। मैंने एक बड़ी ही अद्भुत, अतुल और आश्चर्य-जनक बात देखी है

मानसी—क्या देखा ? युद्ध—

राणा—नहीं मानसी, इस बार युद्ध तो हुआ ही नहीं । युद्धक्षेत्रमें केवल एक आग बरसने लगी और उसीमें हमारी सारी सेना जल गई ।

मानसी—कैसे !

राणा—हम कुछ भी न समझ सके । न जाने वह क्या था । मानो वह इस जगतका कुछ नहीं था ! ऐसा मालूम होता था कि उल्कावृष्टि हो रही है ! अभिशापका एक भयंकर पूर आ रहा है ! हमने क्षण-भरके लिए आँखें बन्द कर लीं । हमारे शरीर परसे होकर मानो हृत्कम्पकी बिजली-सी निकल गई; एक बार मस्तिष्क चकरा गया । हम कुछ भी समझ न सके । जब आँखें खुलीं तो मालूम हुआ कि मानों हम सोकर उठे हैं । रण-क्षेत्रमें हम

अकेले ही रह गये, और दिखाई न पड़ा। चारों ओर लाशोंके ढेर लगे हुए थे। ओह, वह कैसा दृश्य था!

मानसी—पिताजी, जान पड़ता है, आप कुछ उत्तेजित हो गये हैं। बैठ जाइए, मैं आपकी कुछ सेवा करूँ।

राणा—हम उसी श्मशानमें अकेले घूमने लगे, लेकिन किसीने हमपर वार नहीं किया।

मानसी—क्या इस युद्धमें आपने अपनी हार मान ली?

राणा—हमारे हार मानने न माननेसे कुछ होता जाता नहीं। युद्ध कोई तर्क नहीं है, जिसमें हार न माननेसे ही जीत हो जाय। यह तो स्थूल, कठिन और प्रत्यक्ष सत्य है—बहुत ही प्रत्यक्ष सत्य है। परन्तु न जाने क्यों, हमें उन लोगोंने मारा नहीं। हम उस महा श्मशानमें 'महाबतखाँ–महाबतखाँ' 'गजसिंह–गजसिंह' चिल्लाते फिरे, पर कोई हमारे पास न आया। तुम बतला सकती हो कि क्यों कोई हमारे पास नहीं आया मानसी?

मानसी—पिताजी, आप क्षुब्ध न हों—

राणा—हाँ, एक और बात हमारी समझमें नहीं आती। महाबतखाँ युद्धमें जीत तो गये, पर तो भी न जाने क्यों गर्वपूर्वक उदयपुर दुर्गमें अभी तक प्रवेश नहीं कर रहे हैं। अब तो यही बाकी है कि वे आकर दुर्गपर अधिकार कर लें।

मानसी—पिताजी, आप हार गये तो हार गये, इसमें दुःख काहेका? युद्धमें किसी एक पक्षकी हार तो होती ही है।

राणा—बेटी, तुम ठीक कहती हो। कोई न कोई पक्ष तो हारेगा ही। तब दुःख काहेका?–नहीं मानसी, हमें भी इसका कोई दुःख नहीं है। पर उन लोगोंने आकर हमें वध क्यों नहीं किया?

(रानी आती है।)

राणा—(रानीसे) बड़ी भारी समस्या उपस्थित है। तुम कुछ बतला सकती हो?

रानी—क्या?

राणा—हमें उन लोगोंने वध क्यों नहीं किया?

[रानी मानसीकी ओर देखती है।]

राणा—सुनो, उस गम्भीर निशामें, उस युद्ध-क्षेत्रमें, उस मुर्दोंके ढेरमें हम अकेले खड़े थे। वह कैसा दृश्य था, तुम उसकी कल्पना भी नहीं कर सकतीं। ऊपर आकाशमें अनन्त निश्चल तारे, और नीचे पृथ्वीपर अगणित मुर्दे। उन दोनोंके बीचमें और कुछ भी नहीं,–केवल घोर अन्धकार। हमें ऐसा

जान पड़ता था कि इस जगतसे हमारा कोई सम्बन्ध ही नहीं है। मानों हम भी मर गये हैं और मानों 'हम जीती जागती मृत्यु' हैं। उस युद्ध-क्षेत्रमें हमने तलवार निकालकर चलाई, पर वह केवल उस रातकी ठंडी हवाको ही काटकर रह गई। हमने पुकारा—'महाबत' पर वह ध्वनि चारों ओर व्यर्थ ढूँढ़कर लौट आई। इसके बाद (स्वर मग्न हो जाता है) हमने एक बार उस युद्ध-क्षेत्रमें चारों ओर दृष्टि दौड़ाई, तब उन्हीं नक्षत्रोंके प्रकाशमें हमने देखा कि हमारा सोनेका राज्य किसी भारी भूकम्पसे बिल्कुल नष्ट-भ्रष्ट होकर पड़ा है। (धीमे स्वरसे) इसके उपरान्त उस महाश्मशानकी खुली हुई हवा मानों मृत सैनिकोंकी देहमुक्त आत्माओंके बोझसे भारी जान पड़ने लगी। बड़े कष्टसे हमने एक गहरी साँस ली। वह साँस भी ऊपर आकाशकी ओर न जाकर अपने बोझेके कारण जमीनपर ही गिर पड़ी। हम समझते हैं, यदि उस समय वहाँ उतना अन्धकार न होता तो वह ढूँढ़नेसे अवश्य मिल जाती!

रानी—जो होना था सो हो गया। अब सोच करनेसे क्या होगा? मैंने तो पहले ही कह दिया था।

राणा—हाँ, तुमने ठीक कहा था। मेवाड़ मर गया और हम खड़े हुए देखते रहे। हम उसे कन्धेपर उठाकर यहाँ ले आये हैं। आओ, देखोगी?

दूसरा दृश्य

स्थान—मेवाड़के राज-अंतःपुरके अन्दरका एक छोटा-सा रास्ता।

समय—रात।

[दो दासियाँ बातचीत करती हुई आती हैं।]

पहली दासी—हाय, बूढ़े गोविन्दसिंहजीके दुःखका पार नहीं रहा। बेचारोंके एक ही लड़का था।

दूसरी दासी—जो हो, पर चारणी रानी लाशको गोविंदसिंहके घर तक क्यों ले आईं, सो वे ही जानें।

पहली दासी—उनके सभी काम ऐसे बेढब होते हैं। मानों उन्हें और कोई काम ही नहीं था। क्या वहाँ बहुतसे लोग जुड़े हैं?

दूसरी दासी—हाँ, सारा आँगन भर गया है। गोविंदसिंह घर नहीं हैं। चारणी रानीके लड़के अरुणसिंह उन्हें बुलाने गये हैं। मैंने देखा कि उसी आँगनमें लाशके पास रानी अकेली खड़ी हैं। और सब लोग दूर थे।

पहली दासी—अँधेरेमें?

दूसरी दासी—अँधेरा ही था, दूर एक कोठरीमें एक दीआ अवश्य टिमटिमा रहा था। यह कौन ?

पहली दा०—कहाँ ?

दूसरी०—देखती नहीं हो ? वह।

पहली दा०—वे तो राजकुमारी हैं। देखो न कैसी दशा है ? आँखें ऊपर चढ़ गई हैं, आँचल गिरकर मिट्टीमें घसिटता जाता है, दोनों हाथोंकी मुट्ठियाँ बँधी हैं।

दूसरी दा०—लो, वे तो इधर ही आ रही हैं। चलो, हम लोग चलें।

[दोनों एक ओर चली जाती हैं। दूसरी ओरसे मानसी आती है।]

मानसी—गये ! अजय भी सदाके लिए गये ! मुझसे न तो मिले और न कुछ कहा ही, और चले गये ! पर क्या यह ठीक है ? ओह, मेरा सिर घूमता है। आँखोंके सामने पीले पीले बिम्ब पृथिवीसे उठते हैं और ऊपर जाकर नष्ट हो जाते हैं। शरीरमेंसे कोई तरल ज्वाला निकल रही है। सिरके ऊपरसे आकाश हट गया है, पैरोंके नीचेसे पृथ्वी निकल गई है। कहाँ हूँ ! हाय (थोड़ी देर तक चुप रहनेके उपरान्त धीरे धीरे) मैं बड़ी ही निष्ठुर हूँ। कभी मुँहसे बात भी नहीं की। उस दिन जब अजयने मेरी कणमात्र अनुकम्पाका भिखारी बनकर दीन नेत्रोंसे मेरी ओर देखा था, जब वे केवल एक बार मेरे करुणदृष्टिसे देखनेके लिए मरे जा रहे थे, तब भी मैं उनसे न बोली। इसीसे मेरे अजय रूठ करके चले गये हैं। मेरे उसी अभिमानको चूर्ण करके, पैरोंसे रौंध करके, वे चले गये। अजय ! आज तुम्हारे पैरोंपर लोटनेको जी चाहता है, आज तुम्हें अपना हृदय चीरकर दिखलानेकी इच्छा होती है। पर हाय ! अब समय नहीं है ! [मानसी चली जाती है।]

तीसरा दृश्य

स्थान—गोविन्दसिंहके घरका आँगन। **समय**—रात

[खूब तेज हवा चल रही है। अजयसिंहकी लाश पड़ी है। पास ही सत्यवती और चार उठानेवाले खड़े हैं। गोविन्दसिंह टक लगाकर लाशकी ओर देख रहे हैं।]

गोविन्द०—यही मेरे पुत्र अजयसिंहका मृत शरीर है। सत्यवती, यह तुम्हें कहाँ मिला ?

सत्यवती—रास्तेके किनारे।

गोविन्द०—इसकी मृत्यु किस प्रकार हुई ?

सत्य०—जो लोग आसपास खड़े हुए थे उनसे मालूम हुआ कि महाबत-खाँके सिपाही बेचारे गाँववालोंकी हत्या कर रहे थे, इसलिए कल्याणीको सिपाही पकड़कर ले गये।

गोविन्द०—बेटा अजय, तुमने मुझे क्षमा माँगनेका भी अवसर न दिया! मैं क्रोधसे अन्धा हो गया था, इसीसे तुम घर छोड़कर चले गये और मैंने तुमसे कुछ भी न कहा। हाय, मैंने तुम्हें बुला क्यों न लिया! जाने ही क्यों दिया! हाय, बेटा अजय! प्राणोंसे भी प्यारे अजय! तुमने मुझे क्षमा माँगनेका भी अवकाश न दिया! इतना अभिमान! इतना रूठना!—यह तो तुम्हारा बूढ़ा बाप था!—अजय!

सत्य०—गोविन्दसिंहजी, इसमें दुःख काहेका? अजयने तो दीनोंकी रक्षामें प्राण दिये हैं।

गोविन्द०—हाँ सत्यवती, तुम सत्य कहती हो, अजयने दीनोंकी रक्षामें प्राण दिये हैं—असहायोंकी सहायता करते हुए प्राण त्यागे हैं, तब फिर दुःख काहेका? जाओ, अच्छी तरह दाह-कर्म्म करो।

[गो० लाशका मुँह ढकते हैं। उठानेवाले अजयका शव उठाना चाहते हैं।]

गोविन्द०—ठहरो, मुझे एक बार और देख लेने दो। हाय मेरे सर्वस्व! बूढ़ेके बल! अन्धेकी लकड़ी! मेरे प्यारे बेटे! एक बार—नहीं नहीं, दुःख काहेका? सत्यवती तुम ठीक कहती हो, अजयने दीनोंकी रक्षामें प्राण दिये हैं। मेवाड़भूमि! राक्षसी! इतने लोगोंका प्राण लेकर भी तेरा पेट न भरा! तू तो जानेके लिए तैयार बैठी है, पर जान पड़ता है सबको खाये बिना न जायगी! हाय! मेरा सोनेका संसार माटी हो गया—नहीं, नहीं, कौन कहता है कि मेरा अजय—मेरा अजय मर गया! यह नहीं मरा है। देखो, मेरी ओर देख रहा है! वह तो अभी जीता है! अजय!

(गोविन्दसिंह अजयके मृत शरीरकी ओर बढ़ते हैं। सत्यवती बीचमें आकर खड़ी हो जाती है।)

सत्य०—गोविंदसिंहजी, शोकसे पागल न हो जाओ! तुम्हारा पुत्र अब इस संसारमें नहीं है।

गोविन्द०—नहीं है? पुत्र नहीं है? ठीक कहती हो, पुत्र नहीं है! मैं भूलता हूँ—अजय! अजय! मेरे सर्वस्व अजय! (मुँह ढक लेते हैं।)

सत्य०—गोविन्दसिंहजी, तुम वीर हो। पुत्र-शोकसे इतना अधीर होना तुम्हें शोभा नहीं देता।

गोविन्द०—क्या कहा सत्यवती, जरा और जोरसे बोलो। मुझे सुनाई नहीं पड़ता। मेरे भीतर भयंकर आँधी चल रही है। उसके मारे कुछ सुनाई नहीं पड़ता। ओ हो हो हो! (अपनी छाती पकड़ लेते हैं।)

[कल्याणी आती है।]

कल्याणी—पिताजी! पिताजी!

गोविन्द०—कौन बुलाता है? कल्याणी? सर्वनाशिनी, देख अपनी करतूत। राक्षसी, मेरे अजयको तूने ही खाया है। दे, अब लाके मुझे दे।

कल्याणी—हाय, भइया! भइया! (अजयके मृत शरीरसे लिपट जाती है।)

गोविन्द०—चल, दूर! मेरे अजयको मत छू! हट जा, डाइन!

[कल्याणीका हाथ पकड़कर झिड़क देते हैं।]

कल्याणी—(उठकर) पिताजी, मैं सचमुच ही डाइन हूँ, मुझे मार डालो। मेरा नाम कल्याणी किसने रक्खा था? पिताजी, मैं आपके घरमें अकल्याणकी शिखा हूँ,—मेवाड़के लिए धूमकेतु हूँ,—पृथ्वीका सर्वनाश करनेवाली हूँ। मुझे मार डालो। इस सर्वनाशिनीको संसारसे दूर कर दो। बस, फिर आपको सब कुछ मिल जायगा। मुझे मार डालो! मार डालो!—

(गोविन्दसिंहके सामने सिर झुकाकर बैठ जाती है)

गोविन्द०—मेरे हृदयमें यह क्या हो रहा है! यह! यह नरककी दाह है! पिशाचका नृत्य है! अब तो नहीं सहा जाता। हे जगदीश! अब तो नहीं सहा जाता!

सत्य०—गोविन्दसिंहजी, दुःखमें अधीर मत होओ। अपने वीर पुत्रका दाह-कर्म्म गौरवसहित करो। तुम्हारे पुत्रने दीनोंकी रक्षामें प्राण दिये हैं।

गोविन्द०—सच कहती हो! तुम सच कहती हो! मेरे पुत्रने दीनोंकी रक्षामें प्राण दिये हैं। अब मैं दुःख न करूँगा। मुझे क्षमा करो बेटी, यह तो मेरे गौरवकी बात है। पर।—(रोते हुए) सत्यवती, अब मैं बहुत बूढ़ा हो गया हूँ! बहुत ही बूढ़ा हो गया हूँ!

कल्याणी—पिताजी—

गोविन्द०—(काँपते हुए स्वरसे) आओ बेटी कल्याणी, मेरी गोदमें आओ! मेरी घरसे निकाली हुई, पतिद्वारा त्यागी हुई, मातृहीना, अभागिनी कन्या, आओ! मैंने सती साध्वीका अपमान किया था, इसी लिए ईश्वरने मुझे यह दण्ड दिया है। जाओ, तुम लोग इस मृत देहका दाह कर्म्म करो।

(लोग मृत शरीरको उठाना चाहते हैं, इतनेमें वहाँ तेजीसे राजकुमारी मानसी आती है। उसके बाल खुले हुए हैं और वस्त्र अस्त व्यस्त हैं।)

मानसी—ठहरो, जरा मुझे भी देख लेने दो।

सत्य०—कौन ! राजकुमारी !

मानसी०—अजय ! प्रियतम ! मेरे जीवन-सर्वस्व ! मेरे स्वामी !

सत्य०—यह क्या राजकुमारी ? तुम्हारे स्वामी ?

मानसी—अच्छा तो सब लोग सुन लो। आज तक मैंने यह बात किसीसे नहीं कही थी, पर आज कहती हूँ। अजयसिंहके साथ मेरा विवाह हो गया था, पर उसका हाल कोई नहीं जानता था—यहाँ तक कि स्वयं मैं भी नहीं जानती थी। चुपचाप, बिना किसीके जाने हुए, आत्मा ही आत्मामें यह विवाह हुआ था।—प्रियतम ! कहाँ चले ! देखो, मैं आई हूँ। आज मैं तुम्हारी वह प्रगल्भा गुरानी नहीं हूँ; दयामयी राजकुमारी नहीं हूँ; आज मैं तुम्हारी प्रेम-भिखारिणी एक दुर्बल स्त्री हूँ ! आज मैं दीनतम भिखारिणीसे भी दीन हूँ ! अजय ! मैंने आज तक तुमसे नहीं कहा कि मैं तुमपर कितना प्रेम करती हूँ ! मैं पहले यह समझ ही नहीं सकी थी। मुझे क्षमा करो।

सत्य०—हाय ! राजकुमारी भी शोकसे उन्मत्त हो गई है !—मानसी, शान्त होओ ! अजयने दीनोंकी रक्षामें प्राण दिये हैं—

मानसी—सच कहती हो। प्राण इसी प्रकार देने चाहिए। मेरे प्यारे शिष्य ! आज तुमने मेरे गुरुका स्थान ले लिया है ! तुम्हारे गौरवकी रश्मि परलोकको व्याप्त करके इस पृथ्वीपर आ लगी है ! यदि मरना हो, तो बस इसी तरह मरना चाहिए ! वृद्ध गोविन्दसिंहजी, आप धन्य हैं जो ऐसे पुत्रके पिता होनेका अभिमान कर सकते हैं ! धन्य हूँ मैं, जिसके ऐसे पति हैं ! गोविन्दसिंहजी,—यह हम लोगोंके गर्व करनेका समय है, शोक करनेका नहीं।

गोविन्द०—(सूखे हुए गलेसे) राजकुमारी, अजयने दीनोंकी रक्षामें प्राण दिये हैं। दुःख काहेका ? (भग्न स्वरसे) अजयने देशके लिए—

(आगे उनसे बोला नहीं जाता ! वे दीवारपर दाहिना हाथ टेककर उस-पर अपना सिर देते हैं। रोते रोते हिचकी बँध जाती है।)

मानसी—व्यर्थ ! व्यर्थ ! व्यर्थ ! भीतरसे शोकका प्रबल उच्छ्वास उठता है, जो सारी सान्त्वनाओंको ढँक देता है ! अब तो नहीं सहा जाता।—अजय ! अजय !—

कल्याणी—यह सब क्या हो रहा है, कुछ समझमें नहीं आता। यह स्वर्ग है या मर्त्य ! ये सब देवता हैं या मनुष्य ! यह जीवन है या मृत्यु ! मैं कौन हूँ ! ऊः—(मूर्च्छित होकर गिर पड़ती है।)

सत्य०—कल्याणी ! कल्याणी !

गोविन्द०—लड़की मर रही है, मरने दो। हम सब लोग साथ ही जायँगे —पुत्र, कन्या, मैं, मेवाड़, सब साथ ही जायँगे। पुत्र गया, कन्या गई, यह मेवाड़-मेरा प्यारा मेवाड़-सो भी डूब रहा है-डूब रहा है-वह डूबा ! चलो मैं भी चलूँ।

(पागलोंकी तरह दौड़ते हुए निकल आते हैं।)

चौथा दृश्य

स्थान—मेवाड़की एक घाटीमें महाबतखाँका खेमा। **समय**—सन्ध्या।

[महाबतखाँ खेमेके बाहर खड़े हुए पहाड़ोंपर अस्त होनेवाले सूर्यकी किरणें पड़ती हुई देख रहे हैं।]

महाबत०—चलो, अस्त हो गया—

[महाराज गजसिंह आते हैं।]

गज०—खाँ साहब !

महाबत०—आइए महाराज !

गजसिंह—आपने फतह पाई है; पर आप अपनी फौजके साथ उदयपुरमें दाखिल क्यों नहीं होते ?

महाबत०—क्या आप इसकी कैफियत तलब करते हैं ?

गज०—नहीं, मैंने सिर्फ यों ही पूछा था। खाँ साहब, सुना कि इस बार मेवाड़की औरतोंने भी हथियार उठाये हैं !—औरतोंने ?

महाबत०—औरतोंने हथियार उठाये हैं !—औरतोंने ?

गज०—जी हाँ औरतोंने। अब देखिए कि वे किस तरहकी लड़ाई करती हैं। अबकी बार इस लड़ाईमें कुछ कोमल-भाव तो जरूर आएगा। मैं भी इस लड़ाईमें जाऊँगा।

महाबत०—महाराज, आप राजपूत होकर भी राजपूत औरतोंके बारेमें ऐसा बाहियात मजाक करते हैं। क्या आप सचमुच राजपूत हैं ? नहीं—

गज०—खाँ साहब !—

महावत०—जाइए, जाइए अपनी यह बहादुरी अपने मुल्कके लिए रख छोड़िए। कभी काम आयगी। (गजसिंह जाते हैं।)

महाबत०—ये ही सब हजरत हिन्दू धर्म्मका झण्डा उड़ाते हैं! हिन्दुओ! तुम लोग अपना मुल्क तो खैर हारे ही थे; पर साथ ही साथ तुम लोगोंने अपनी आदमीयत भी खो दी। (एक सिपाही आता है।)

महाबत०—क्या खबर है?

सि०—शाहजादा साहब मय फौजके तशरीफ लाये हैं।

महाबत०—आ गये?—अच्छा जाओ। (सिपाही चला जाता है।)

महा०—अब और फौज लेकर आनेकी तो जरूरत नहीं थी। मेवाड़को तो मैं खतम ही कर चुका था। लेकिन हाँ, मैं मुगलोंकी फौजको लेकर उदयपुरके किलेमें नहीं जाना चाहता था, सो अब यह काम शाहजादा साहब—मुगल, खुद कर लेंगे। मेरा काम यहीं खतम हो जाता है।

[गोविन्दसिंह आते हैं।]

महा०—आप कौन हैं?

गोविन्द०—मैं मेवाड़का एक सरदार हूँ।

महा०—यहाँ क्यों आये?

गोविन्द०—बतलाता हूँ, जरा साँस ले लेने दो।

महा०—क्या आपको राणा अमरसिंहने सन्धि करनेके लिए भेजा है?

गोविन्द०—ऐसा होनेसे पहले मुझपर बिजली टूट पड़े!

महा०—तब फिर आप क्या चाहते हैं?

गोविन्द०—मैं मरना चाहता हूँ। मैं बहुत बूढ़ा हो गया हूँ, मरना चाहता हूँ। मैं लड़कर मरना चाहता हूँ, पर किसी मामूली सिपाहीसे लड़कर नहीं मरना चाहता। मैं तुम्हारे हाथसे मरना चाहता हूँ। तुम्हारे साथ युद्ध करके मरूँगा।

महा०—आप पागल तो नहीं हो गये हैं!

गोविन्द०—नहीं महाबत, मैं पागल नहीं हूँ। तुम समझते होगे कि मैं द्वन्द्व युद्ध करके तुम्हें वध करनेके लिए आया हूँ।—हे ईश्वर! यदि इस समय मुझमें इतनी शक्ति होती! नहीं महाबतखाँ, मैं जानता हूँ कि आज द्वन्द्व युद्धमें तुमसे जीत न सकूँगा; पर हाँ, मैं मर सकूँगा। मैं तुम्हारे हाथों मरना चाहता हूँ।

महा०—यह बड़ी अद्भुत इच्छा है!

गोविन्द०—इसमें अद्भुतपना तो कुछ नहीं है। मैंने स्वर्गीय राणा प्रतापसिंहके पास रहकर कमसे कम पचास युद्ध किये हैं। मेरे शरीरमें घावोंके न जाने

कितने चिह्न हैं। अब अन्तिम घाव तुम्हारी तलवारके आघातसे होना चाहिए।

महा०—इससे आपको लाभ क्या होगा ?

गोविन्द०—लाभ तो कोई ऐसा विशेष नहीं है; पर तुम धर्म्मके मुसलमान होनेपर भी जातिके हिन्दू हो, और राणा प्रतापसिंहके भतीजे हो, इसलिए तुम्हारे हाथसे मरनेमें जरा गौरव है।

महा०—आप क्या सालुंबरके ठाकुर गोविन्दसिंहजी हैं ?

गोविन्द०—हः हः हः पहचान लिया महाबतखाँ ? अब तो समझ गये न कि मैं क्यों तुम्हारे हाथों मरना चाहता हूँ ? महाबतखाँ, आज तुमने मेवाड़को जीता है—मेवाड़को ध्वंस किया है। पर तो भी मैं तुम्हें उदयपुरके दुर्गमें प्रवेश न करने दूँगा। मेवाड़में अब सेना नहीं है। अब तुम्हें युद्ध नहीं करना पड़ेगा। मैं मेवाड़का अन्तिम वीर हूँ। आज मैं अकेला ही मुगलोंको उदयपुरमें जानेसे रोकनेके लिए खड़ा हूँ। बिना मेरे प्राण लिये तुम उदयपुरके दुर्गमें प्रवेश न करने पाओगे। अस्त्र उठाओ !

(गोविन्दसिंह तलवार खींच लेते हैं।)

महाबत०—लेकिन वीरवर, मैं तो उस दुर्गमें प्रवेश ही नहीं करना चाहता।

गोविन्द०—चाहे तुम प्रवेश करना चाहो और चाहे न चाहो, मेरे लिए दोनों बराबर हैं।—लो, अस्त्र उठाओ।

महाबत०—सुनिए—

गोविन्द०—नहीं नहीं, मैं कुछ भी नहीं सुनना चाहता। मेरे अन्दर बड़ी तेज आग जल रही है। मेरा पुत्र नहीं रहा, कन्या नहीं रही, अब मैं मरना चाहता हूँ। अपने स्वाधीन मेवाड़को मुगलोंद्वारा पद-दलित होता हुआ देखनेसे पहले ही मैं मरना चाहता हूँ। और मैं उसीके हाथसे मरना चाहता हूँ, जो दामाद होनेपर भी मेरे पुत्रकी हत्या करनेवाला है, जो हमारे देशकी सन्तान होकर भी दूसरोंका गुलाम है, जो हमारे धर्म्मका होकर भी मुसलमान है, जो हमारे राजाका भाई होकर भी उनका शत्रु है। महाबत, अस्त्र उठाओ !

महा०—(तलवार खींचकर) आप शान्त हो जायँ, मैं आपको कभी न मारूँगा।

गोविन्द०—मैं कुछ नहीं सुनना चाहता। अपनी रक्षा करो।

महा०—गोविन्दसिंहजी,—

गोविन्द०—मुझे मारो मारो—

महा०—मैं अस्त्र रख देता हूँ।

गोविन्द०—महाबत, मैं तुम्हें नहीं छोड़ूँगा। अस्त्र लो। आज मैं मरनेके लिए आया हूँ; अवश्य मरूँगा। अस्त्र लो। मैं नहीं छोड़ूँगा।

(गोविन्दसिंह आक्रमण करना चाहते हैं। इतनेमें पीछेसे गजसिंह आकर गोविन्दसिंहपर गोली चला देते हैं। गोविन्दसिंह गिर पड़ते हैं।)

महा०—यह क्या ? महाराज, यह आपने क्या किया ?

गज०—इसे मार डाला।

महा०—आप जानते हैं ये कौन हैं ?

गज०—क्यों ? कोई डाकू होगा।

गोविन्द०—मैं डाकू नहीं हूँ—डाकू आप हैं। दूसरोंका राज्य लूटनेके लिए मैं नहीं आया हूँ; आप आये हैं। महाबतखाँ, जाओ, अब तुम उदयपुर जाओ। अब तुम्हें कोई न रोकेगा। अपनी माताको पकड़कर मुगलोंकी दासी बनाओ ! सन्तानका कर्तव्य पूरा करो ! अजय !—कल्याणी !—

(गोविन्दसिंह छटपटाकर मर जाते हैं।)

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—उदयपुरके दुर्गके सामनेका एक रास्ता। **समय**—रात।

[एक दुर्गरक्षक राजपूत सैनिकके साथ कई नागरिक बातें कर रहे हैं।]

पहला ना०—क्यों जी, हमारे महाराज दुर्गसे आज बाहर क्यों गये ?

सै०—क्यों गये हैं; यह तो नहीं मालूम; पर इतना सुना है कि सेनापति महाबतखाँने मेवाड़के विरुद्ध हथियार रखकर बादशाहको एक पत्र लिख भेजा था। इसी लिए अबकी शाहजादा खुर्रम लड़ने आये हैं। मुगल-दूत शाहजादाके यहाँसे एक पत्र लेकर आया था। सुनते हैं, उसी पत्रमें उसने मेल करनेकी इच्छा प्रकट की थी। मुगल-दूतके चले जानेपर उसके दूसरे दिन—आज सबेरे राणाजी घोड़ेपर सवार होकर शाहजादेके खेमेकी ओर गये हैं।

दूसरा ना०—फिर क्या हुआ ?

सै०—इसके आगे क्या हुआ, सो मुझे नहीं मालूम।

तीसरा ना०—क्या राणाजी अभीतक लौटकर नहीं आये ?

सै०—नहीं।

चौथा ना०—उनके साथ और कौन गया है ?

सै०—कोई नहीं। वे अकेले गये हैं।

पहला ना०—देखो, वे कौन हैं ?

दूसरा ना०—हमारे राणाजी तो नहीं हैं ?

तीसरा ना०—लेकिन नहीं, ये राणाजी तो नहीं जान पड़ते।

चौथा ना०—कपड़े तो राजाओंकेसे ही हैं। (सिपाहीसे) क्यों जी, तुम जानते हो वे कौन हैं ?

सै०—वे जोधपुरके महाराज गजसिंह हैं।

पहला ना०—वही न, जो महाबतखाँके साथ मेवाड़पर आक्रमण करने आये हैं ?

सै०—हाँ।

दूसरा ना०—ये राजपूत ही हैं न ?

तीसरा ना०—राजपूत होकर भी राजपूतोंके शत्रु हैं।

गज०—(सैनिकसे) किलेका फाटक बंद है ?

सै०—हाँ महाराज।

गज०—फाटक खोलो, अब यह किला हमारा है।

सै०—महाराज, बिना अपने प्रभुकी आज्ञाके मैं यह फाटक नहीं खोल सकता।

गज०—प्रभुकी आज्ञा ? तुम्हारे प्रभु अब राणा अमरसिंह नहीं हैं; तुम्हारे प्रभु अब हम हैं।

सै०—आप हैं ! मुझे मालूम नहीं था। पर तो भी बिना राणा अमरसिंहजीकी आज्ञाके मैं किलेका फाटक नहीं खोल सकता।

गज०—(अपने सैनिकोंसे) इससे फाटककी ताली छीन लो।

सै०—प्राण रहते आप लोग ताली नहीं ले सकते। (तलवार खींच लेता है।)

गज०—अच्छा, इसे मार डालो।

पहला ना०—(दूसरे नागरिकोंसे) खड़े खड़े क्या देखते हो ? मारो।

(सब लोग गजसिंहपर आक्रमण करते हैं।)

गज०—बहादुरो,—

[गजसिंहके सिपाही नागरिकोंपर आक्रमण करते हैं। इतनेमें बहुतसे मुगल-सैनिकोंके साथ राणा अमरसिंह आ पहुँचते हैं।]

राणा—सैनिको, अस्त्र रख दो।

(मुगल सिपाहियोंको देखकर राजपूत अस्त्र रख देते हैं।)

राणा—महाराज गजसिंह, यहाँ आपका क्या काम था ?

गज०—हम इस दुर्गमें प्रवेश करना चाहते हैं।

राणा—राज-अतिथि ! राणा अमरसिंह तुम्हारा यथोचित आदर सत्कार करेंगे। मुगलोंके कुत्ते ! ले, यह तेरे योग्य अतिथि-सत्कार है !

(लात मारकर गजसिंहको जमीनपर गिरा देते हैं।)

राणा—साहसी सैनिक, दुर्गका द्वार खोल दो। (द्वार खुल जानेपर मुगल सैनिकोंसे) अब तुम लोग वापस जा सकते हो।

(राणा दुर्गमें प्रवेश करते हैं, दुर्गका द्वार बन्द हो जाता है।)

छठा दृश्य

स्थान—मेवाड़का पहाड़ी रास्ता। **समय**—सन्ध्या।

[सत्यवती, अरुणसिंह और कई चारणियाँ]

चारणियाँ गाती हैं—

१—टूटा है सुख-स्वप्न हमारा, तार बीनके टूटे हैं।
गावें क्या मेवाड़-देशके भाग देख लो, फूटे हैं ॥
इस मेवाड़-शैलकी शोभा सत्यानाश हुई सारी।
आसमानसे मानों इसपर, आकर वज्र गिरा भारी ॥
अब मेवाड़-शिखरपर झंडा, लाल नहीं फहराता है।
दशा देख आँखोंके आगे, अंधकार छा जाता है ॥

२—पक्षीगण इसकी कुंजोंमें, गीत नहीं अब गाते हैं।
फूलोंका रस पीनेको अब, नहीं भ्रमरगण आते हैं ॥
शशि भी शोभाहीन हुआ है, मलय वायु नहिं बहती है।
छाई दोनों तीर उदासी, नदी शुष्क हो रहती है ॥ अब०—

३—जंगलमें मंगल नहिं होता, चहल-पहल नहिं गाँवोंमें।
नरनारीगण फिरें बिलखते, फँसे हुए विपदाओं में ॥
राजपूत वीरोंकी अब हैं, नहीं चमकतीं तलवारें।
सुन्दरियाँ भी डरके मारे, नहीं वसन-भूषण धारें ॥ अब०—

४—तिमिरावृत्त मेवाड़ हुआ है, सुख सर्वस्व गँवाया है।
चारण-गणने यश गाकर बस, धीरज उसे धराया है ॥
चला जाय सुख उसका सारा, किन्तु कहानी रह जावे।
गूँज उठे मेवाड़ शून्य यह, जब चारण इसको गावे ॥ अब० —

[तीन सैनिकोंके साथ हिदायतअलीका प्रवेश ।]

हिदायत०—तुम कौन हो ?

सत्य०—मैं चारणी हूँ।

हिदा०—तुम गलियों और रास्तोंमें यही गाना गाती फिरती हो ?

सत्य०—हाँ, हम लोगोंका यही काम है ।

हिदा०—अब तुम यह गीत न गा सकोगी ।

सत्य०—क्यों ?

हिदा०—अब यह मुल्क तुम्हारा नहीं है; मुगलोंके हाथ आ गया है ।

सत्य०—मुगलोंकी जय हो ! जितने दिनों तक मेवाड़ स्वाधीन था, उतने दिनों तक हम लोगोंने युद्ध किया । पर जब मेवाड़ने सिर झुकाकर मुगलोंका अधिकार मान लिया, तब मुगलोंके साथ हम लोगोंका कोई झगड़ा नहीं। लेकिन क्या इसी लिए हम रो भी न सकेंगे ? सिपाही साहब, दुनियामें सभी लोग अपनी माँको चाहते हैं, अभागे मेवाड़वासी ही उसपर प्रेम करना क्यों छोड़ दें ?

हिदा०—नहीं, तुम यह गीत न गा सकोगी ।

अरुण०—हम लोग गावेंगे, देखें कौन रोकता है। गाओ माँ !

हिदा०—अगर तुम लोग यह गाना गाओगे, तो कैद कर लिए जाओगे ।

सत्य०—अच्छी बात है, आप हम लोगोंको कैद कर लीजिए। हम लोग आपके अँधेरे कैदखानेमें ही बैठे बैठे अपने दुःखका यह गीत गावेंगे। गाओ बेटा !

हिदा०—अच्छी बात है ! अब तुम लोग कैद हो गये । (आगे बढ़ता है ।)

अरुण०—(तलवार खींचकर) अगर जान प्यारी हो, तो खबरदार ! माँको हाथ न लगाना !

हिदा०—अरे उद्धत छोकरे ! तलवार रख दे ।

अरुण०—(कड़ककर) रखा लो !

हिदा०—सिपाहियो, इसे मारो ।

[सिपाही आगे बढ़कर अरुणपर वार करना चाहते हैं, अरुण उनसे लड़ता है ।]

सत्य०—शाबास, बेटा ! अपनी माताकी रक्षा करो ।

(एक मुगल सिपाही घायल होकर गिर पड़ता है ।)

सत्य०—शाबास बेटा ! प्राण रहते अस्त्र न छोड़ना । ऐसा ही चाहिए । वाह कैसा आनन्द है !

(हिदायतअली अरुणपर स्वयं आक्रमण करता है। अरुणसिंहको दोनों सिपाही और हिदायतअली घेर लेते हैं। अपने पुत्रकी मृत्यु निकट समझकर सत्यवती थोड़ी देरके लिए आँखें बन्द कर लेती है। इतनेमें महाबतखाँ कई सिपाहियोंके साथ वहाँ आ पहुँचते हैं।)

महाबत०—हिदायतअली, ठहर जाओ। (सब लोग लड़ना छोड़ देते हैं।)

महाबत०—हिदायतअली, तुम्हें शर्म नहीं आती ? एक लड़केपर दो दो जवान मिलकर वार कर रहे हैं, और ऊपरसे तुम भी उनकी मदद करते हो ! छिः ! (अरुणसे)–बेटा, तुम अपनी जानकी परवा न करके अपनी माँको बचा रहे थे, तुम धन्य हो ! प्राणोंके उत्सर्ग करनेका मार्ग यही तो है ! जीते रहो !

(सत्यवती इतनी देरतक चुपचाप बड़े गौरव और आनन्दसे अपने पुत्र अरुणकी ओर देख रही थी। अब वह महाबतखाँकी ओर दो कदम आगे बढ़ती है और पीछे हटकर सिर झुका लेती है। महाबतखाँ सत्यवतीकी ओर देखने लगता है।)

महा०—बहन, मैं तुमसे क्या कहूँ ! अब तुम्हें ' बहन ' कहकर पुकारनेका अधिकार भी मुझे नहीं रह गया।–तब मैं क्या कहूँ ? मुझे क्षमा करो–बहन !

सत्य०—हे ईश्वर ! यह तुमने क्या किया ? मेरा छोटा भाई मुझे बहन कहकर पुकार रहा है, तो भी उसे खींचकर हृदयसे नहीं लगा सकती हूँ !—

अरुण०—माँ, ये कौन हैं ?

सत्य०—ये मुगल-सेनापति महाबतखाँ हैं।

महा०—बेटा, मैं तुम्हारा मा हूँ।

सत्य०—चलो बेटा, हम लोग चलें।

महा०—कहाँ जाओगी ? मुझे क्षमा करती जाओ।

सत्य०—महाबतखाँ, तुम जानते हो कि तुमने कौन-सा पाप किया है ?

महा०—हाँ, मैं जानता हूँ। मैंने अपने हाथसे अपने घरमें आग लगाई है और उसमेंसे उठते हुए धूमको पैशाचिक आनन्दसे देखा है।

सत्य०—केवल इतना ही ?

महा०—और क्या ? मैं मुसलमान हो गया हूँ, पर इसके लिए मैं यह स्वीकार नहीं करता कि मैंने कोई दोष किया है—जिसका जैसा विश्वास हो वह वैसा माननेके लिए स्वतंत्र है। तो भी—

सत्य०—बहुत ठीक ! (अरुणसे) आओ बेटा, चलें।

महा०—यदि मुसलमान होनेको भी पाप मान लिया जाय, तो भी वह

पाप क्या इतना भयानक है कि मनुष्यके हृदयकी सारी कोमल प्रवृत्तियोंको नष्ट कर दे ?—बहन, मैं जानता हूँ कि स्त्रियोंका हृदय पवित्रताका तपोवन, आत्मोत्सर्गका लीलास्थल और प्रीतिका नन्दन-कानन है। पर क्या आचारके नियम इतने कठोर हैं कि वे स्त्रीके ऐसे हृदयको भी पत्थर बना दें ! एक बार थोड़ी देरके लिए तुम यह भूल जाओ कि तुम हिन्दू हो और मैं मुसलमान—तुम पीड़ित हो और मैं अत्याचारी। केवल इतना ही समझो कि तुम भी मनुष्य हो और मैं भी मनुष्य हूँ—तुम बहन हो और मैं भाई हूँ। उस बाल्यावस्थाका ध्यान करो, जब तुम मुझे गोदमें लेकर घूमती थीं, मेरे गालोंको चूमा ले-लेकर भर देती थीं और मुझे छातीसे लगाकर सोती थीं। बहन, स्मरण करो—हम तुम वही मातृहीन भाई बहन हैं।

सत्य०—हे भगवान्—

महा०—बहन—

सत्य०—अब नहीं सहा जाता। जो होना था, सो हो चुका।—छोटे भइया मेरे, जाओ मैंने तुम्हारे सारे अपराध क्षमा कर दिये। भगवानसे प्रार्थना है कि वे भी तुम्हें क्षमा कर दें। जाओ भइया, मैं अब तुम्हें मुगल-सेनापति महाबतखाँ नहीं समझती। मेरे लिए अब तुम मेरे वही छोटे भाई महीपति हो।—भइया, जाओ।

महा०—अच्छा बहन, अब मैं जाता हूँ। (सत्यवतीको प्रणाम करते हैं।)

सत्य०—आयुष्मान् होओ भइया ! (अरुणसे)-चलो बेटा, चलें।

हिदायत०—तुम लोग कहाँ जाओगे ? मैं तुम्हें कैद करूँगा।

महा०—किसीकी मजाल नहीं, जो मेरे सामने मेरी बहनका बाल बाँका कर सके। जाओ बहन !

हिदा०—खाँसाहब, अब आप सिपहसालार नहीं हैं, इस लिए मैं आपकी बात नहीं मान सकता। इस वक्त सिपहसालार हैं शाहज़ादा खुर्रम।

[शाहजादाका प्रवेश।]

शाह०—अच्छी बात है ! खैर, मैं खुद हुक्म देता हूँ ! (सत्यवतीसे) जाओ, तुम लोग घर जाओ।

हिदा०—लेकिन शाहज़ादा साहब, यह औरत यों ही गीत गा-गाकर बगावत फैलाती है।

शाह०—मैं दूरसे उसका गाना सुन रहा था। वह गाना मायूसी और गमसे भरा हुआ है।

हिदा०—शाहज़ादा साहब, इस तरहके गानोंसे सल्तनतके अमन-अमा-नमें खलल पड़ेगा।

शाह०—नहीं, सल्तनतके अमन-अमानकी हिफाजत कर ली जायगी। मुगल-बादशाह उसकी हिफाजत करना जानते हैं। हिदायतअली, अगर वतनकी मुहब्बतके इस तरहके गानोंसे सिर्फ मेवाड़से ही नहीं बल्कि सारे हिन्दोस्तानसे मुगलोंकी हुकूमत, जाड़ेके मौसमके एक बादलके टुकड़ेकी तरह उड़ जाती हो, तो उसे उड़ जाने दो। मुगलोंकी सल्तनत इतनी कच्ची और बालूपर बनी हुई नहीं है। उसका पाया हिन्दोस्तानियोंकी गहरी और मज़बूत मुहब्बतपर है। अगर कोई शख्स मुनासिब तरीकेपर अपने वतनके साथ मुहब्बत करे, अपने मुल्ककी परस्तिश करे, तो उसमें कभी दखल न देना चाहिए। अगर सिर्फ इसी लिए सारी सल्तनत चली जाय, तो कोई परवा नहीं। हिदायत अली, समझ गये ?

हिदा०—जी हाँ शाहज़ादा साहब।

शाह०—(सत्यवती) गाओ बहन, तुम वही गाना गाओ। इस बातका अफसोस नहीं है कि तुम लोग यह गाना गाती फिरती हो, बल्कि अफसोस इस बातका है कि आज मेवाड़में यह गाना सुनानेवाले लोग नहीं हैं। गाओ बहन, कोई डर नहीं है। मैं सुनूँगा। गाओ, गाओ, तुम सब लोग गाओ। मैं भी तुम लोगोंका साथ दूँगा। हिदायतअली, तुम भी गाओ। सिपाहियो, तुम लोग भी गाओ। (सब लोग वहाँसे गाते हुए जाते हैं।)

सातवाँ दृश्य

स्थान—उदयसागरका किनारा। **समय**—सन्ध्या

[मानसी अकेली खड़ी है।]

मानसी—मेरे ऊपरसे होकर एक आँधी निकल गई है। अब फिर मुझे समुद्रका वही मृदु, गंभीर और अनादि संगीत सुनाई पड़ता है। अब तो वह पहलेसे भी सौगुना मधुर जान पड़ता है। मेघ हट गये। अब फिर आकाशमें वही नक्षत्रोज्वल नीलिमा दिखाई पड़ती है,—पर अब वह पहलेसे सौगुना निर्मल है। मैं देखती हूँ कि आज मेरा कर्तव्य-पथ जीवनके छोटे मोटे सुखों और दुःखोंकी सीमा छोड़कर बहुत दूर तक फैल गया है।

[कल्याणी आती है।]

मान०—कौन कल्याणी ?

कल्या०—हाँ राजकुमारी !

मान०—फिर वही राजकुमारी ? अब तो हमारा तुम्हारा नया सम्बन्ध हो गया है ! बहन कल्याणी, तुम तो फिर रोने लग गईं ! छिः !

कल्याणी—नहीं बहन, अब मैं नहीं रोऊँगी। क्या करूँ, रहा नहीं जाता। इसी लिए मैं दौड़ी हुई तुम्हारे पास चली आई। मुझे धीरज बँधाओ।

मान०—कल्याणी, तुम अपना सारा दुःख मुझे दे दो और मेरा सुख तुम ले लो।

कल्याणी—तुम्हारा सुख ?

मान०—हाँ, मेरा सुख। दुःख मुझे अच्छी तरह पीस डालनेके लिए आया था; पर वह मुझे पीस न सका और न आगे ही पीस सकेगा। मैं दुखको हिंसक जन्तुकी तरह बाँधकर वशमें करूँगी और उससे काम लूँगी। कल्याणी, दुःखने मेरा बहुत उपकार किया है। इतने दिनों तक मैं सुखके राज्यमें रहती थी, दुःखका राज्य मुझे आँधी या कुहासेकी तरह दिखाई पड़ता था। अब मैं उसी दुखके राज्यमें वास करने लगी हूँ। मैंने शत्रुको जान पहचान लिया है। अब वह मुझे कभी असावधान न पावेगा। इतने दिनों तक जीवन अपूर्ण था, अब वह पूर्ण हो गया।

कल्याणी—बहन, तुम धन्य हो !

मान०—बहन, तुम भी धन्य होओगी !

कल्याणी—किस तरह बहन ?

मान०—तुम इस काममें मुझे सहायता दो। आओ, हम दोनों मिलकर मनुष्य-जातिके कल्याणके लिए अपना अपना जीवन उत्सर्ग कर दें। तुम्हारा 'कल्याणी' नाम सार्थक हो,—मुझे सहायता दोगी ?

कल्याणी—हाँ बहन, दूँगी।

मान०—अच्छा। तब देखो कि तुम्हें धैर्य्य होता है या नहीं। जिसका यह व्रत हो, फिर उसे काहेका दुःख ?

कल्याणी—अच्छी बात है, मेरा व्यर्थ प्रेम तुम्हारे ही काममें सार्थक हो।

मान०—क्या तुम अब भी महाबतखाँके प्रति घृणा करती हो ?

कल्याणी—बहन, उस दिन मैं अभिमान करके उन्हें कड़ी कड़ी बातें सुनाकर चली आई थी और यह कह आई थी कि मैं तुमसे घृणा करती हूँ; लेकिन अब मुझे मालूम हुआ कि मुझमें उनके प्रति घृणा करनेकी शक्ति नहीं है। बाल्यावस्थासे ही जिसका ध्यान करके मैं इतनी बड़ी हुई हूँ, यौवन-

कालमें जिसे मैंने अपने जीवनका ध्रुव तारा माना है, इस हताशाके अन्धकारमें भी जिसकी चिन्ता मेरे भीतर रावणकी चिताकी तरह बराबर जल रही है, उसके प्रति मैं घृणा नहीं कर सकती। वह केवल बात ही बात है।

मान०—कल्याणी, उसकी आवश्यकता भी नहीं है। तुम अपने प्रेमको मनुष्यत्वमें—सारे मनुष्य-समाजमें व्याप्त कर दो। तुम्हें शान्ति मिलेगी। विश्व-प्रेम प्रतिदान नहीं चाहता। वह योग्य और अयोग्यका भी विचार नहीं करता। वह सेवा करके सुखी होता है।

[सत्यवती आती है।]

सत्य०—मानसी, तुम्हें तुम्हारे पिताजी बुला रहे हैं।

मानसी—वे लौट आये ?

सत्य०—हाँ।

मानसी—मुगलोंके साथ सन्धि हो गई ?

सत्य०—नहीं। महाराजने देखा कि शाहजादा खुर्रमने मेलके लिए उनके पास जो पत्र भेजा था, उसमेंकी सब बातें खाली जबानी जमाखर्च ही थीं। वे केवल आकाश-कुसुम थीं, केवल मृगतृष्णा थीं।

मान०—क्यों ?

सत्य०—(थोड़ी देर तक चुप रहकर) मानसी, मेल होता है बराबर-वालोंमें। हाथका मेल हाथके साथ होता है। पैरके आघातके साथ पीठका मेल नहीं होता; जयध्वनिके साथ रोने पीटनेका मेल नहीं होता। शाहजाद चाहते हैं कि राणाजी दुर्गसे बाहर निकलकर शाही फरमान लें। मानसी, राणा प्रतापसिंहके पुत्रके लिए इस अपमानकी अपेक्षा तो मृत्यु ही अच्छी है।

मा०—अब पिताजी क्या करेंगे ?

सत्य०—आज उन्होंने सब सामन्तोंको बुलाकर अपने पुत्रको सिंहासनपर बैठा दिया है और राज्य-भारका त्याग कर दिया है। वे रानीको साथ लेकर राज्यसे निकल जायँगे और जंगलमें जा रहेंगे। मानसी, मेवाड़का पतन हो गया।

मान०—मेवाड़का पतन क्या आज आरम्भ हुआ है ? नहीं, उसका पतन तो बहुत दिन पहले ही आरम्भ हो चुका है। यह पतन उस परम्पराकी एक गाँठ मात्र है।

सत्य०—तब वह पतन आरम्भ कब हुआ था ?

मान०—जिस दिनसे मेवाड़ अपनी आँखोंपर पट्टी बाँध आचारका हाथ पकड़कर केवल उसीके सहारे चलने लगा और जिस दिनसे वह सोचना-

समझना भूल गया। जब तक स्रोत बहता है, तब तक जल शुद्ध रहता है; पर जब स्रोतका बहना बन्द हो जाता है, तब उसमें कीड़े पैदा होने लगते हैं। इसीसे आज इस जातिमें नीच स्वार्थ, क्षुद्रता, भ्रातृ-द्रोह और विजाति-द्वेष आदि दोषोंका जन्म हुआ है। पूर्वकालका उदार—अति उदार हिन्दूधर्म—आज प्राणहीन हो गया है, आचारकी ठठरी भर रह गई है। जिसका धर्म्म चला गया, क्या उसका पतन न होगा? अब यह देखना चाहिए कि जातिमें कितना पाप फैल गया है। मेवाड़के पतनके लिए व्यर्थ रोनेसे क्या होगा?

सत्य०—तब क्या इस दुःखमें यही सान्त्वना है?

मान०—नहीं, इससे भी बढ़कर सान्त्वना है। वह सान्त्वना यह है कि मेवाड़ चला गया है तो उसे जाने दो, हमें उससे भी बड़ी सम्पत्ति प्राप्त हो। हम चाहती हैं कि हमारे भाई नैतिक बलसे—चरित्र-बलसे—शक्तिवान् हों कि जिससे वे दुःखमें, निराशामें और आँधीके अंधकारमें धर्मको अपने जीवनका ध्रुव तारा बनावें। और यदि वे ऐसा न करें तो नष्ट हो जायँ; हमें उसके लिए दुःख न होगा।

सत्य०—हमारे भाई नष्ट हो जायँ और हम उन्हें नष्ट होते हुए चुपचाप देखा करें?

मान०—नहीं, हम उन्हें प्राण-पणसे बचानेकी चेष्टा करें। पर तो भी यदि हम अपने प्रयत्नमें कृतकार्य्य न हो सकें, तो कोई वश नहीं—ईश्वरका मंगल नियम पूरा हो। जिस प्रकार स्वार्थकी अपेक्षा जातीयता बड़ी है, उसी प्रकार जातीयताकी अपेक्षा मनुष्यत्व बड़ा है। जातीयता यदि मनुष्यत्वकी विरोधिनी हो, तो ऐसी जातीयताका मनुष्यत्वके महासमुद्रमें विलीन हो जाना अच्छा है। अच्छा हो, यदि ऐसे मनुष्यत्व-विहीन देशकी स्वाधीनता डूब जाय; और वह जाति फिर मनुष्य बन जाय।

सत्य०—क्या कभी ऐसा होगा?

मान०—क्यों नहीं होगा? हमें चाहिए कि हम सब उसीकी साधना करें। उच्च साधना कभी निष्फल नहीं होती। इस जातिके लोग फिर मनुष्य बनेंगे।

सत्य०—कब?

मान०—जिस दिन लोग इस सीमासे बाहर पहुँचे हुए आचारोंके क्रीत-दास न रहकर स्वयं सोचना-विचारना सीखेंगे; जिस दिन उनके भीतर भावोंका स्रोत फिरसे बहेगा; जिस दिन लोग जिसे उचित और कर्तव्य समझेंगे उसे निर्भर होकर करते जायँगे—इसमें किसीकी प्रशंसाकी या किसीसे

बिगड़ने या नाराज होनेकी अपेक्षा न रखेंगे; किसीकी टेढ़ी की हुई भौंहोंकी जरा भी परवा न करेंगे और जिस दिन लोग युगोंकी पुरानी पोथियाँ फेंक-कर नया धर्म्म ग्रहण करेंगे।

सत्य०—वह नया धर्म्म कौनसा ?

मानसी०—उस धर्मका नाम है प्रेम। जो कोई इस धर्म्मका उपासक बनता है, उसे अपने आपको छोड़कर क्रमशः भाईके साथ, जातिके साथ, मनुष्यके साथ और उसके बाद मनुष्यताके साथ प्रेम करना सीखना पड़ता है। इसके बाद उसे स्वयं और कुछ नहीं करना पड़ता, ईश्वरका कोई अज्ञेय नियम उसके भविष्यको स्वयं ही सुधार देती है। बहिन, जातीय उन्नतिका मार्ग लहूकी नदियोंके बीचसे होकर नहीं है; बल्कि प्रेमपूर्वक परस्पर आलिंगनके मध्यसे होकर है। जो पथ चैतन्यदेव दिखला गये हैं, उसी पथपर चलो। यदि हम स्वयं भी नीच, कुटिल और स्वार्थी बने रहें, तो राणा प्रतापसिंहकी स्मृति मस्तकपर रखकर और गत गौरवका निर्वाण-प्रदीप गोदमें रखकर जन्म-भर रोते रहनेसे भी हमारे किये कुछ न होगा।　　(सब जाती हैं।)

आठवाँ दृश्य

स्थान—उदयसागरका किनारा। **समय**—सन्ध्या।

[बादल घिरे हुए हैं। अमरसिंह अकेले खड़े हैं।]

राणा०—मेवाड़का आकाश क्रोधसे गरज रहा है। मेवाड़के पहाड़ लज्जासे मुँह ढँके हुए हैं। मेवाड़का सरोवर क्षोभके मारे किनारोंसे टकरा रहा है। मेवाड़के कुल-देवताओंने रोषसे मुँह फेर लिया है। आज हमारे हाथों हमारे मेवाड़का—राणा प्रतापके मेवाड़का—पतन हो गया। हाय ! (इधर उधर टहलने लगते हैं।)

[महाबतखाँ आते हैं।]

राणा—बन्दगी जनाब !

महा०—मेवाड़के राणाकी जय हो।

राणा—जनाब सिपहसालार साहब, आप खाली लहूकी नदियाँ बहाना ही नहीं जानते, बल्कि व्यंग करना भी खूब जानते हैं। अच्छी बात है, मेवाड़के राणाकी जय हो !

महा०—नहीं महाराज, मैं व्यंग नहीं करता।

राणा—तुम्हारे व्यंग करने या न करनेसे कुछ होता जाता नहीं महाबतखाँ, हम तुमसे एक बार मिलना चाहते थे।

महा०—कहिए, क्या आज्ञा है ?

राणा—तुममें विनय तो खूब है। अच्छा सुनो। हमने तुम्हें एक ऐसे कामके लिए बुलाया है, जो तुम्हारे सिवा और किसीसे नहीं हो सकता।

महा०—आज्ञा कीजिए, महाराज !

राणा—महाबतखाँ, जरा एक बार हमारी ओर देखकर बतलाओ तो सही कि तुम हमारे कौन हो ?

महा०—महाराज मैं आपका भाई हूँ।

राणा—बहुत ठीक; और तुमने काम भी भाईके योग्य ही किया है। तुमने अपने पितामह और प्रपितामहकी भूमि मेवाड़को मुगलोंद्वारा पददलित कराया है। तुम्हारे दोनों हाथ उसके लहूसे रँग हुए हैं।

महा०—महाराज, मैंने बादशाहका नमक खाया है।

राणा—सो कबसे ? महाबतखाँ, जाने दो। तुमने तुम्हारा जो काम था उसे किया। उसके लिए तुमसे वाद-विवाद करना व्यर्थ है। जो विधर्मी हो, मुगलोंकी जूठन खानेवाला हो, उसके लिए यह काम अनुचित नहीं है। जो एक अनियम और उद्दाम स्वेच्छाचारका उद्गमन हो, उसके लिए यह काम अनुचित नहीं है। तुमने मेवाड़का ध्वंस किया है; पर वह काम अभी तक पूरा नहीं हुआ। तुम्हें उचित है कि तुम उसके साथ मेवाड़के राणाका भी अन्त कर दो। यह लो, तलवार। (तलवार आगे बढ़ाते हैं)

महा०—राणा—

राणा—जो हम कहते हैं उसके विरुद्ध कुछ भी मत कहो। सुनो, तुम हमें मारो। इससे तुम्हारा कलंक कुछ अधिक न बढ़ जायगा और हम तुम्हें कोई ऐसा काम भी नहीं बतला रहे हैं, जो तुम्हें अप्रिय हो। हम जानते हैं कि तुम हमारा रक्त पीनेके लिए छटपटा रहे हो। तुम्हारा दाहिना हाथ हमारे प्राण लेनेके लिए आग्रहसे काँप रहा है। तुम हमारा वध कर डालो।

महा०—महाराज, महाबतखाँ इतना हीन नहीं है। मैंने तलवार चलाकर और आग लगाकर मेवाड़-भूमिको श्मशान बना दिया है, पर तो भी मैंने अन्याय्य युद्ध नहीं किया है, न्याय युद्ध किया है।

राणा—न्याय्य युद्ध ! महाबत, तुम इसे न्याय्य युद्ध कहते हो ? एक

ऐसे राज्यके मुट्ठीभर सैनिकोंपर इतने बड़े साम्राज्यकी विपुल सेनाकी ाई ! एक चिनगारीको बुझानेके लिए समुद्रका प्रवाह ! एक बालककी ःमापर नरकका दुःस्वप्न ! और फिर भी इसे न्याय्य युद्ध बतलाते हो ? ने दो, तुम जीत तो गये ही हो, अब उसमें जो कसर है उसे भी पूरा कर लो। यह तलवार राणा प्रतापसिंहजी मरते समय दे गये थे और कह गये —'देखो, इसका अपमान न होने पावे।' पर हमने इसका अपमान किया। अतः वह अपमान हमारे रक्तसे धुलकर साफ हो जायगा।

महा०—महाराज, महाबतखाँ योद्धा है, जल्लाद नहीं।

राणा—अच्छी बात है। तो फिर युद्ध कर लो। लो हाथमें तलवार। ालवार सँभालते हैं।)

महा०—महाराज, मैंने मेवाड़के विरुद्ध अस्त्र उठाना छोड़ दिया है।

राणा—वह कबसे ? तलवार लो—तलवार। आज मेवाड़के श्मशानपर ; माताका शव कन्धेपर रखकर हम तुम्हें द्वंद्व-युद्धके लिए आह्वान करते हैं।

महा०—महाराज, सुनिए—

राणा—नहीं, हम कुछ भी न सुनेंगे। भीरु म्लेच्छ ! कुलांगार ! युद्ध ।। देखें, तेरी किस वीरता—किस बहादुरीके कारण सारा भारत काँपता । हम छोड़ेंगे नहीं। अधम ! नरकके कीड़े ! शैतान !

महा०—अच्छी बात है महाराज, तब लड़ ही लीजिए। (तलवार काळकर) सावधान, भारतमें यदि महाबतखाँका कोई प्रतिद्वन्द्वी है तो ; राणा ही है, तो भी सावधान ! (दोनों तलवारोंको सँभालते हैं।)

राणा—आज भाई-भाईमें युद्ध होता है; ऐसा युद्ध संसारमें किसीने न ा होगा। बस, अब पृथ्वीपर प्रलय हो जाय !

[इतनेमें मानसी दोनोंके बीचमें आकर खडी हो जाती है। उसके बाल बिखरे हुए हैं।]

मानसी—यह क्या पिताजी ! यह क्या—(महाबतखाँसे) शान्त होओ।

राणा—हट जाओ बेटी, तुम इसमें बाधा मत डालो।

मानसी—पिताजी, शान्त होओ। जो कुछ सर्वनाश होना था सो हो चुका। अब उस सर्वनाशको अपने भाईके रक्तसे रंजित मत करो। इस शोककी ान्त्वना हत्या नहीं है। इसकी सान्त्वना है फिरसे मनुष्य होना।

राणा—मनुष्य होना ? सो कैसे मानसी !

मानसी—शत्रु मित्रका ज्ञान भूलकर, विद्वेष त्यागकर, अपनी का और देशकी कालिमाको विश्व-प्रेमके जलसे धोकर !—गाओ चारणियो, गीत गाओ जो मैंने तुम्हें सिखलाया है—

[गेरुए वस्त्र पहने हुए बहुत-सी चारणियाँ वहाँ गाती हुई आ जाती हैं मानसी भी उनके साथ गाने लगती है ।]

क्यों व्यर्थ शोक तुम करते हो, फिरसे सब मानव बन जाओ ।
यदि देश गया तो जाने दो, फिरसे सब मानव बन जाओ ॥
औरोंपर है सब रोष व्यर्थ , अपने मत शत्रु बनो भाई ।
लखते अपने भी दोष रहो, फिरसे सब मानव बन जाओ ॥
मिट सकता है यदि चाहो तुम, यह हत आशामय वर्तमान ।
तो विश्व प्रेममय हो जाओ, भाई भाईसे प्रेम ठान ॥
'मेरा' 'तेरा' यह भ्रम भूलो, औरोंको सब अपनाओ तुम ।
जगको गृह अपना मान रहो, फिरसे सब मानव बन जाओ ॥
यदि शत्रु तुम्हारा भी होवे, उन्नत उदार चेता महान ।
तो उसके साथ भलाई कर, कर दो सप्रेम निज हृदय दान ॥
यदि मित्र तुम्हारा कपटी हो, जल्दीसे उसको दूर करो ।
सबसे वह भारी शत्रु अहो, फिरसे सब मानव बन जाओ ॥
लड़ने भिड़नेके लिए सदा, जगमें दो सेनायें तयार ।
तुम पुण्य-सैन्यको अपनाकर, दो पाप-सैन्यको हटा मार ॥
जिस ओर धर्म हो रहो उधर, रख ईश्वरको सिरपर महान ।
चाहे सर्वस्व चला जाये, फिरसे सब मानव बन जाओ ॥*

राणा—महाबत !

महा॰—महाराज !

राणा—तुम्हारा कोई दोष नहीं है । हमारा ही दोष है । भाई, क्षमा करो

महा॰—भइया, आप मुझे क्षमा करें । [दोनों गले मिलते हैं

यवनिका-पतन

* रचयिता —साहित्याचार्य पं॰ श्रीनिधि द्विवेदी ।